

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180020

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.

M 83.1/429 P

Accession No.

G.H. 1655

Author

बहापाल

Title

पिंजरे की उडाज-1944

This book should be returned on or before the date
last marked below.

पिंजरे की उड़ान

यशपाल

[दूसरा संस्करण]

विश्व कार्यालय, लखनऊ

मार्च १९४४]

[मूल्य १।।५]

प्रकाशक
प्रकाशवती-पाल
विश्वव कार्यालय
लखनऊ.

सर्वाधिकार सुरक्षित
(अनुवाद सहित)

मुद्रक
पंडित मन्नालाल तिवारी
शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, नजीराबाद,
लखनऊ.

दो शब्द

हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस वास्तविकताएँ ही होती हैं। इसीलिए कथा कहानी के रूप में कल्पना का महत्व है। हमारी कल्पना या तो अतीत सुख-दुख की अनुभूति के चित्र बनाकर उससे सुख उठाना चाहती है या आदर्श की ओर संकेत कर समाज के लिए नया नक्शा तैयार करने का यत्न करती है।

जब छः वर्ष तक मैं पिंजरे में बन्द था, उस समय वास्तविक कार्य-शीलता के लिए कोई अवसर न था। कहानी के रूप में कल्पना भूत और भविष्य की भूलभुलैया में उड़ानें भरा करती।

इनमें से कुछ कहानियाँ मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ पारखियों ने इन्हें पुस्तक रूप में छपवा देने का अनुरोध किया, और इन्हें छपवा दिया है।

भाव, भाषा और कला की दृष्टि से प्रयास कैसा रहा यह इन कहानियों को पढ़ने वाले निश्चय करेंगे। मैंने केवल अपने प्रति ईमानदारी निभाई है।

‘विम्व’

यशपाल

लखनऊ नवम्बर १९३६

द्वितीय संस्करण

कहानियों में बिना परिवर्तन किये केवल भाषा सम्बन्धी सुधारकर इन कहानियों का दूसरा संस्करण छपवाया जा रहा है।

मार्च १९४४

यशपाल

तुम्हारे लिये—
इन कहानियों को लिखा था,
तुम्हीं को इन्हें भेंट करता हूँ—
य—

१. मक्रील		६—१८
२. नीरस-रसिक		१६—३६
३. हिंसा		३७—४४
४. समाज-सेवा		४५—५६
५. प्रेम का सार		५२—६१
६. पहाड़ की स्मृति		५७—६६
७. पीर का मञ्जार		६७—७३
८. दुखी-दुखी		७४—८४
९. भावुक		८५—९३
१०. मृत्युञ्जय		९४—१०७
११. शर्त		१०८—११५
१२. तीसरी चिता		११६—१२३
१३. प्रायश्चित्त		१२४—१३४
१४. हृदय		१३५—१४१
१५. पराई		१४२—१५०
१६. मज्जहब		१५१—१५७
१७. कर्मफल		१५८—१६१
१८. दर्पण		१६२—१६७
१९. परलोक		१६८—१७२
२०. दुख		१७३—१८३
२१. समर्पण		१८४

‘मक्रील’

गरमी का मौसिम था। ‘मक्रील’ की सुहावनी पहाड़ी आबोहवा में छुट्टी बिताने के लिए आई हुई सम्पूर्ण भद्र जनता खिंचकर मोटरों के अड्डे पर—जहाँ पंजाब से आनेवाली सड़क की गाड़ियाँ ठहरती हैं—एकत्र हो रही थी। सूर्य पश्चिम ओर देवदारों से छाई पहाड़ी की चोटी के पीछे सरक गया था। सूर्य का अवशिष्ट प्रकाश चोटी पर उगे देवदारों से ढकी आग की दीवार के समान जान पड़ता था।

ऊपर आकाश में मोर-पूँछ के आकार में दूर-दूर तक सिन्दूर फैल रहा था। उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊँची काली चोटियाँ निश्चल, शान्त और गम्भीर खड़ी थीं। संध्या के भीने अँधेरे में पहाड़ियों के पार्श्व के बनों से पत्तियों का कलरव तुमुल परिमाण में उठ रहा था। वायु में चीड़ की तीखी गन्ध भर रही थी। सभी ओर उत्साह, उर्मग और चहल-पहल थी। भद्र महिलाओं और पुरुषों के समूह राष्ट्र के मुकुट को उज्ज्वल करनेवाले कवि के सम्मान के लिए उतावले हो रहे थे।

योरुप और अमेरिका ने जिसकी प्रतिभा का लोहा मान लिया, जो देश के इतने अभिमान की सम्पत्ति है, वही कवि मक्रील में कुछ दिन

स्वास्थ्य-सुधारने के लिये आ रहा है। मक्रील में जमी राष्ट्र-अभिमानी जनता पलकों के पाँवड़े डाल उसकी अगवानी के लिये आतुर हो रही थी।

पहाड़ियों की छाती पर खिंची धूसर लकीर-सी सड़क पर दूर धूल का एक बादल-सा दिखाई दिया। जनता की उत्सुक नज़रें और उँगलियाँ उस ओर उठ गईं। क्षण-भर में धूल के बादल को फाड़ती हुई काले रंग की एक गतिमान वस्तु दिखाई दी। वह एक मोटर थी। आनन्द की हिलोर से जनता का समूह लहरा उठा। देखते-ही-देखते मोटर आ पहुँची।

जनता की उन्मत्तता के कारण मोटर को दस कदम पीछे ही रुक जाना पड़ा—‘देश के सिरताज की जय!’ ‘सरस्वती के वरद पुत्र की जय!’ ‘राष्ट्र के मुकुट-मणि की जय!’ के नारों से पहाड़ियाँ गूँज उठीं।

मोटर फूलों से भर गई। बड़ी चहल-पहल के बाद जनता से घिरा हुआ, गज्रों के बोझ से गर्दन झुकाये, शनैः शनैः कदम रखता हुआ मक्रील का अतिथि मोटर के अड्डे से चला।

उत्साह से बावली जनता विजयनाद करती हुई आगे-पीछे चल रही थी। जिन्होंने कवि का चेहरा देख पाया, वे भाग्यशाली विरले ही थे। ‘धवल गिरि’ होटल में दूसरी मँजिल पर कवि को ठिकाने की व्यवस्था की गई थी। वहाँ उसे पहुँचा, बहुत देर तक उसके आराम में व्याघात कर, जनता अपने स्थान को लौट आई।

कार की त्रयोदशी का चन्द्रमा पार्वत्य-प्रदेश के निर्मल आकाश में ऊँचा उठ अपनी शीतल आभा से आकाश और पृथ्वी को स्तम्भित किए था। उस दूध की बौछार में ‘धवल गिरि’ की हिम-धवल दो मंजिली इमारत चौंदी की दीवार-सी चमक रही थी। होटल के आँगन की फुलवारी में भी खूब चौंदनी थी परन्तु उत्तर-पूर्व के भाग में इमारत के बाजू की छाया पड़ने से अधेरा था। बिजली के प्रकाश से चमकती

खिड़कियों के शीशों और पदों के पीछे से आनेवाली मर्मरध्वनि तथा नौकर के चलने-फिरने की आवाज़ के अतिरिक्त सब शान्त था ।

उस समय इस अँधेरे बाजू के नीचे के कमरे में रहनेवाली एक युवती फुलवारी के अन्धकारमय भाग में एक सरो के पेड़ के समीप खड़ी दूसरी मंजिल में पुष्प-तोरणों से सजी उन उज्ज्वल खिड़कियों की ओर दृष्टि लगाए थी, जिनमें सम्मानित कवि को ठहराया गया था ।

वह युवती भी उस आवेगमय स्वागत में सम्मिलित थी । पुलकित हो उसने भी 'कवि' पर फूल फेंके थे, जयनाद भी किया था । उस घमासान भीड़ में समीप पहुँच एक आँख कवि को देख लेने का अवसर उसे न मिला था । इसी साध को मन में लिये वह उस खिड़की की ओर टकटकी लगाये खड़ी थी । काँच पर कवि के शरीर की छाया उसे जब-तब दिखाई पड़ जाती ।

स्फूर्तिप्रद भोजन के पश्चात् कवि ने बरामदे में आ काले पहाड़ों के ऊपर चन्द्रमा के मोहक प्रकाश को देखा । सामने संकरी धुँधली घाटी में बिजली की लपक की तरह फैली हुई मक्रील की धारा की ओर उसकी नज़र गई । नदी के प्रवाह की गम्भीर धरधराहट को सुन वह सिहर उठा । कितने ही क्षण मुँह उठाये वह मुग्ध-भाव से खड़ा रहा । मक्रील नदी के उद्दाम प्रवाह को उस उज्ज्वल चाँदनी में देखने की इच्छा से कवि की आत्मा व्याकुल हो उठी । आवेश और उन्मेष का वह पुतला सौन्दर्य के इस आह्वान की उपेक्षा न कर सका ।

सरो वृक्ष के समीप खड़ी युवती पुलकित भाव से देश-कीर्ति के उस उज्ज्वल नक्षत्र को व्यासी आँखों से देख रही थी । चाँद के धुँधले प्रकाश में इतनी दूर से उसने जो भी देख पाया, उसी से संतोष की साँस ले उसने श्रद्धा से सिर नवा दिया । इसे ही अपना सौभाग्य समझ वह चलने को थी कि लम्बा ओवरकोट पहने, छड़ी हाथ में लिये, दाँई ओर के जीने से कवि नीचे आता दिखाई पड़ा । पल-भर में कवि फुलवारी में आ पहुँचा ।

फुलवारी में पहुँचने पर कवि को स्मरण हुआ, ख्यातनामा मक्रील नदी का मार्ग तो वह जानता ही नहीं। इस अज्ञान की अनुभूति से कवि ने दाएँ-बाएँ सहायता की आशा से देखा। समीप खड़ी एक युवती को देख, भद्रता से टोपी छूते हुए उसने पूछा—‘आप भी इसी होटल में ठहरी हैं ?’

सम्मान से सिर झुकाकर युवती ने उत्तर दिया—‘जी हाँ।’

भिन्नकते हुए कवि ने पूछा—‘मक्रील नदी समीप ही किस ओर है, यह शायद आप जानती होंगी ?’

उत्साह से कदम बढ़ाते हुए युवती बोली—‘जी हाँ। यही सौ कदम पर पुल है।’—और मार्ग दिखाने के लिए वह प्रस्तुत हो गई।

युवती के खुले मुख पर चन्द्रमा का प्रकाश पड़ रहा था। पतली भँवों के नीचे बड़ी-बड़ी आँखों में मक्रील की उज्ज्वलता झलक रही थी।

कवि ने संकोच से कहा—‘न, न, आपकी व्यर्थ कष्ट होगा।’

गौरव से युवती बोली—‘कुछ भी नहीं—यही तो है, सामने !’

‘……उजली चाँदनी रात में……संगमरमर की सुधड़, सुन्दर, सजीव मूर्ति-सी युवती……साहसमयी, विश्वासमयी मार्ग दिखाने चली……सुन्दरता के याजक कवि को। कवि की कविता-वीणा के सूक्ष्म तार स्पन्दित हो उठे……सुन्दरता स्वयं अपना परिचय देने चली है……सृष्टि सौन्दर्य के सरोवर की लहर उसे दूसरी लहर से मिलाने लेजा रही है’—कवि ने सोचा।

सौ कदम पर मक्रील का पुल था। दो पहाड़ियों के तंग दर्रे में से उद्दाम वेग और घनघोर शब्द से बहते हुए जल के ऊपर तारों के रस्सों में झूलता हल्का-सा पुल लटक रहा था। वे दोनों पुल के ऊपर जा खड़े हुए। नीचे तीव्र वेग से लाखों-करोड़ों पिघले हुए चाँद बहते चले जा रहे थे, पार्श्व की चट्टानों से टकराकर वे फेनिल हो उठते। फेनराशि

से दृष्टि न हटा कवि ने कहा—‘सौन्दर्य उन्मत्त हो उठा है ।’ युवती को जान पड़ा, मानो प्रकृति मुखरित हो उठी है ।

कुछ क्षण पश्चात् कवि बोला—‘आवेग में ही सौन्दर्य का चरम विकास है । आवेग निकल जाने पर केवल कीचड़ रह जाता है ।’

युवती तन्मयता से उन शब्दों को पी रही थी । कवि ने कहा—‘अपने जन्म-स्थान पर मक्रील न इतनी वेगवती होगी, न इतनी उद्दाम । शिशु की लटपट चाल से वह चलती होगी, समुद्र में पहुँच वह प्रौढ़ता की शिथिल गम्भीरता धारण कर लेगी ।

‘अरी मक्रील ! तेरा समय यही है । फूल न खिल जाने से पहले इतना सुन्दर होता है और न तब जब उसकी पंखुड़ियाँ लटक जायँ । उसका असली समय वही है, जब वह स्फुटोन्मुख हो । मधुमाखी उसी समय उस पर निछावर होने के लिये मतवाली हो उठती है ।’ एक दीर्घ निःश्वास छोड़, आँखें झुका, कवि चुप हो गया ।

मिनट-पर-मिनट गुज़रने लगे । सर्द पहाड़ी हवा के झोंके से कवि के वृद्ध शरीर को समय का ध्यान आया । उसने देखा, मक्रील की फेनिल श्वेतता युवती की सुघड़ता पर विराज रही है । एक क्षण के लिये कवि ‘घोर शब्दमयी प्रवाहमयी युवती’ को भूल ‘मूक युवती’ का सौन्दर्य निहारने लगा । हवा के दूसरे झोंके से सिहरकर वह बोला—‘समय अधिक हो गया है, चलना चाहिए ।’

लौटते समय मार्ग में कवि ने कहा—‘आज त्रयोदशी के दिन यह शोभा है । कल और भी अधिक प्रकाश होगा । यदि असुविधा न हो तो क्या कल भी मार्ग दिखाने आओगी ?’ और स्वयं ही संकोच के चाबुक की चोट खाकर वह हँस पड़ा ।

युवती ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—‘अवश्य ।’

सर्द हवा से कवि का शरीर ठिठुर गया था । कमरे की सुखद उष्णता से उसकी जान में जान आई । भारी कपड़े उतारने के लिये

वह परिधान की मेज़ (Dressing table) के सामने गया । सिर से टोपी उतार उसने ज्यों ही नौकर के हाथ में दी, बिजली की तेज़ रोशनी से सामने आईने में दिखाई पड़ा, मानो उसके सिर के बालों पर राज ने चूने से भरी कूची का एक पोत दे दिया हो और धूप में सुखाये फल के समान झुर्रियों से भरा चेहरा !

नौकर को हाथ के संकेत से चले जाने को कह वह दोनों हाथों से मुँह ढँक कुर्सी पर गिर-सा पड़ा । मुँदी हुई पलकों में से उसे दिखाई दिया—चाँदनी में संगमरमर की उज्ज्वल मूर्ति का सुघड़ चेहरा जिस पर यौवन की पूर्णता छा रही थी, मक्रील का उन्माद भरा प्रवाह ! कवि की आत्मा चीख उठी—‘यौवन ! यौवन !’

×

×

×

ग्लानि की राख के नीचे बुझती चिनगारियों को उमंग के पंखे से सजगकर कवि चतुर्दशी की चाँदनी में मक्रील का नृत्य देखने के लिये तत्पर हुआ । ‘घोषमयी’ मक्रील को कवि के यौवन, से कुछ मतलब न था, और ‘भूक मक्रील’ ने पूजा के धूप-दीप के धूम्रावरण में कवि के नखशिख को देखा ही न था । इसलिये वह दिन के समय संसार की दृष्टि से बचकर अपने कमरे में ही पड़ा रहा । चाँदनी खूब गहरी हो जाने पर मक्रील के पुल पर जाने के लिये वह शंकित हृदय से फुलवारी में आया । युवती उसकी प्रतीक्षा में खड़ी थी ।

कवि ने धड़कते हुए हृदय से उसकी ओर देखा—आज शाल के बदले वह शूतरी रंग का ओवरकोट पहने थी परन्तु क्या उस गौर सुघड़ नख-शिख को पहचानने में भूल हो सकती थी ?

कवि ने गद्गद् स्वर से कहा—‘ओहो ! आपने अपनी बात रख ली परन्तु इस सदी में, कुसमय शायद उसके न रखने में ही अधिक बुद्धिमानी होती । व्यर्थ कष्ट क्यों कीजियेगा ? आप विश्राम न कीजिये ?’

युवती ने सिर झुका उत्तर दिया—‘मेरा अहो भाग्य है, आपका सत्संग पा रही हूँ ।’

कंठकित स्वर से कवि बोला—‘सो कुछ नहीं, सो कुछ नहीं ।’

पुल के समीप पहुँच कवि ने कहा—‘आपकी कृपा है, आप मेरा साथ दे रही हैं ।……संसार में साथी बड़ी चीज़ है’—मक्रील की ओर संकेत कर—‘यह देखिये, इसका कोई साथी नहीं । इसीलिये हाहाकार कर साथी की खोज में दौड़ती चली जा रही है ।’

स्वयं अपने कथन की तीव्रता के अनुभव से संकुचित हो हँसने का असफल प्रयत्न कर, अप्रतिभ हो वह प्रवाह की ओर दृष्टि गड़ाये खड़ा रहा । आँखें विना ऊपर उठाये ही उसने धीरे-धीरे कहा—

‘पृथ्वी की परिक्रमा कर आया हूँ—कल्पना में सुख की सृष्टिकर जब मैं गाता हूँ, संसार पुलकित हो उठता है । काल्पनिक वेदना के मेरे आर्तनाद को सुन संसार रोने लगता है ; परन्तु मेरे वैयक्तिक सुख-दुःख से संसार को कोई सम्बन्ध नहीं । मैं अकेला हूँ, मेरे सुख को बटानेवाला कहीं कोई नहीं, इसलिये वह विकास न पा तीव्र दाह बन जाता है । मेरे दुःख का दुर्दम वेग असह्य हो जब उछल पड़ता है, तब भी संसार उसे विनोद का ही साधन समझ बैठता है । मैं पिंजरे में बन्द बुलबुल हूँ । मेरा चहकना संसार सुनना चाहता है । मैं सुख से पुलकित हो गाता हूँ, या दुःख से रोता हूँ इसकी चिन्ता किसी को नहीं ।……

‘काश ! जीवन में मेरे सुख-दुःख का कोई एक अवलम्ब होता । मेरा कोई साथी होता ! मैं अपने सुख-दुःख का एक भाग उसे दे, उसकी अनुभूति का भाग ग्रहण कर सकता ! मैं अपने इस निस्सार यश को दूर फेंक संसार का जीव बन जाता ।’

कवि चुप हो गया । मिनट-पर-मिनट बीतने लगे । ठंडी हवा से जब कवि का बूढ़ा शरीर सिहरने लगा, दीर्घ निःश्वास ले उसने कहा—
‘अच्छा, चलें ।’

द्रुतवेग से चली जाती जलराशि की ओर दृष्टि किये युवती कम्पित स्वर में बोली—‘मुझे अपना साथी बना लीजिये ।’

मक्रील के गम्भीर गर्जन में विडम्बना की हँसी का स्वर मिलाते हुए कवि बोला—‘तुम्हें ?’ और चुप रह गया ।

शरीर काँप उठने के कारण पुल के रेलिंग का आश्रय ले युवती ने लजा-विजड़ित स्वर में कहा—‘मैं यद्यपि तुच्छ हूँ……’

‘न-न-न यह बात नहीं,’—कवि ने सहसा रुककर कहा—‘उलटी बात……हॉ, अब चलें ।’

फुलवारी में पहुँच कवि ने कहा—‘कल—’ परन्तु बात पूरी कहे बिना ही वह चला गया ।

×

×

×

अपने कमरे में पहुँचकर सामने के आईने की ओर दृष्टि न करने का वह जितना ही यत्न करने लगा, उतना ही स्पष्ट अपने मुख का प्रतिबिम्ब उसके सम्मुख आ उपस्थिति होता । बड़ी बेचैनी में कवि का दिन बीता । उसने सुबह ही एक तौलिया आईने पर डाल दिया और दिन भर कहीं बाहर न निकला ।

दिन-भर सोच और जाने क्या निश्चय कर संध्या समय कवि पुनः तैयार हो फुलवारी में गया । शूतरी रंग के कोट में संगमरमर की वह सुघड़ मूर्ति सामने खड़ी थी । कवि के हृदय की तमाम उलझन क्षण भर में लोप हो गई । कवि ने हँसकर कहा—‘इस सर्दी में……? देश-काल-पात्र देखकर ही वचन का भी पालन किया जाता है ।’ पूर्णिमा के प्रकाश में कवि ने देखा, उसकी बात के उत्तर में युवती के मुख पर सन्तोष और आत्म-विश्वास की मुस्कराहट फिर गई ।

पुल पर पहुँच हँसते हुए कवि बोला—‘तो साथ देने की बात सचमुच ठीक थी ?’

युवती ने उत्तर दिया—‘उसमें परिहास की तो कोई बात नहीं ।’

कवि ने युवती की ओर देख साहसकर पूछा—‘तो ज़रूर साथ दोगी ?’

‘हाँ ।’—युवती ने हामी भरी, बिना सिर उठाये ही ।

‘सब अवस्था में, सदा ?’

सिर झुकाकर युवती ने दृढ़ता से उत्तर दिया—‘हाँ ।’

‘कवि अविश्वास से हँस पड़ा ।’ तो आओ, उसने कहा—‘यहीं साथ दो—मक्रील के गर्भ में !’

‘हाँ, यहीं सही ।’—युवती ने निर्भीक भाव से नेत्र उठाकर कहा ।

हँसी रोककर कवि ने कहा—‘अच्छा, तो तैयार हो जाओ—एक-दो-तीन !’ हँसकर कवि अपना हाथ युवती के कन्धे पर रखना चाहता था । उसने देखा पुल के रेलिंग के ऊपर से युवती का शरीर नीचे मक्रील के उद्दाम प्रवाह की ओर चला गया ।

भय से उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया । हाथ फैलाकर उसे पकड़ने के विफल प्रयत्न में बड़ी कठिनता से वह अपने आपको सम्हाल सका ।

मक्रील के घोर गर्जन में एक दफ़े सुनाई दिया—‘छप,’ और फिर केवल नदी का गम्भीर गर्जन ।

कवि को ऐसा जान पड़ा—मानो मक्रील की लहरें निरन्तर उसे ‘आओ ! आओ !’ कहकर बुला रही हैं । वह अचेत ज्ञान-शून्य पुल का रेलिंग पकड़े खड़ा रहा । जब पीठ पीछे से चलकर चन्द्रमा का प्रकाश उसके मुँह पर पड़ने लगा, उन्मत्त की भाँति लड़खड़ाता वह अपने कमरे की ओर चला ।

कितनी देर तक वह निश्चल आईने के सामने खड़ा रहा । फिर हाथ की लकड़ी को दोनों हाथों से थाम उसने पड़ापड़ आईने पर कितनी ही चोटें लगाईं और तब सँस चढ़ जाने के कारण वह हाँफता हुआ आईने के सामने की ही कुर्सी पर धम से गिर पड़ा ।

×

×

×

प्रातःकाल हजामत के लिये गरम पानी लाने वाले जब नौकर ने देखा—कवि आईने के सामने कुर्सी पर निश्चल बैठा है ; परन्तु आईना टुकड़े-टुकड़े हो गया है और उसके बीच का भाग गायब है । चौखट में फँसे आईने के लम्बे-लम्बे भाले के से टुकड़े मानो दाँत निकाल कर कवि के निर्जीव शरीर को डरा रहे हैं ।

कवि का मुख कागज़ की भाँति पीला और शरीर काठ की भाँति जड़ था । उसकी आँखें अब भी खुली थीं, उनमें से जीवन नहीं, मृत्यु भाँक रही थी ।

बाद में मालूम हुआ, रात के पिछले पहर कवि के कमरे से अनेक बार—‘आता हूँ, आता हूँ’ की पुकार सुनाई दी थी !

नीरस रसिक

मीरा कदल पुल के नीचे से नीलगूँ दूधिया जेहलम तीसरे पहर के सूर्य की किरणों में झिलमिल बही जा रही थी। जल का कल-कल, मर-मर शब्द और शिकारों के छोटे-छोटे चम्पुओं की छपाछप पुल पर से जानेवालों के कानों तक पहुँच रही थी। नदी के दोनों किनारों पर छोटे-बड़े बजरे लगातार खड़े थे। बीच धार को चीर दायें से बायें और बायें से दायें किनारे जानेवाले, चटकीले रंगीले पदों से आवृत्त शिकारे नदी की धार पर ऐसे जान पड़ते थे जैसे धूप में सूख रही नीली रेशमी साड़ी पर तितलियाँ कढ़ी हों।

बगल में कागज़ का एक पुलिन्दा दबाये एक युवक पुल की लकड़ी की पटिया (फुटपाथ) पर खड़ा पोस्ट आफिस की ओर मुख किये इस दृष्य को देख रहा था। उसे सुनाई पड़ा, 'माँजी ! यह देखो प्रद्युम्न जी खड़े हैं।'।

घूमकर युवक ने देखा, एक वृद्धा की बगल में खड़ी एक तरुणी अभिवादन के अभिप्राय से उसकी ओर देख मुस्करा रही है।

१. काश्मीर में सवारी के लिये उपयोग में आनेवाली छोटी नाव को- शिकारा कहते हैं।

‘नमस्ते’—कह उसने पूछा—‘आप भी यहीं हैं ?’

तरुणी ने कुछ समीप आ उत्तर दिया—‘हम तो यहाँ एक सप्ताह से हैं । पिताजी आकर हमें छोड़ गये थे ।.....आप कब आये ?’

प्रद्युम्न ने कहा, ‘मार्च के शुरू में ही वह कश्मीर आ गया था । पर उधर आज आठ दिन बाद आया था ।’

मुस्कराकर पूछा तरुणी ने—‘क्या इस दृश्य का चित्र बनाने का विचार है ?’

प्रद्युम्न ने फिर जेहलम की ओर देखते हुए उत्तर दिया—‘यह मैं बना चुका हूँ । ठीक यही नहीं, जेहलम के ‘प्रभातकालीन’ दृश्य का एक तैल चित्र मैंने तैयार किया है । उस समय मैं यहीं ठहरा हुआ था । पन्द्रह दिन में वहाँ (संकेत कर) लाइब्रेरी के समीप था । आप लोग कहाँ ठहरे हैं ?’

‘हम लोग ‘चिनार नाले’ में हैं,’ तरुणी ने उत्तर दिया—‘आप अब कहाँ हैं ?’

प्रद्युम्न ने कहा—‘अब मैं डल में हूँ ।’

तरुणी की माँता बोली,—‘डल में ? वहाँ तो सब गोरे-ही-गोरे रहते हैं ; क्यों सविता ?’

सविता ने हँसकर कहा—‘यह भी तो साहिब हैं ।’

सविता की हँसी का उत्तर हँसी से देते हुए प्रद्युम्न ने कहा—‘नहीं साहिब तो मैं नहीं । साहिब लोगों से कुछ हटकर बाईं ओर हूँ । मार्तण्ड का एक पेंटिंग तैयार कर रहा हूँ । उसके बाद उस जगह को छोड़ दूँगा ।’

सविता ने पूछा—‘आप अपने चित्र हमें दिखाइयेगा ?’

‘जब कहिये ।’

माँ की ओर देख सविता ने कहा—‘लेकिन आपके हाउस बोट को कैसे—ढूँढ़ेंगे ?’

दायें किनारे की ओर हाथ उठा प्रद्युम्न ने दिखाया—‘मेरा शिकारा वह खड़ा है । चलिये यहीं से डलगेट होकर चलिये । वहाँ से लौट आपको ‘चिनार नाले’ पहुँचा दूँगा । क्यों माताजी ! आप इधर कहाँ जा रही हैं ?’

सविता ने बताया माँ के लिये एक दवाई लेने वे लोग कैमिस्ट के यहाँ आये थे । अस्ली अभिप्राय घूमने जाने का ही था ।

प्रद्युम्न का बजरा छोटासा था । पहिले छः फुट खुली जगह उसके बाद ड्राइंग रूम । ड्राइंग रूम को ही प्रद्युम्न ने चित्रशाला बना लिया था । माँ और सविता को बिठा, हॉजी (मांभी) को चाय लाने के लिये कह वह बजरे की दीवार के सहारे उलट कर रखे कई एक चित्रों में से एक को उठाकर उन्हें दिखाने लगा ।

यह ‘जेहलम का प्रभातकालीन दृष्य’ था । जो दृश्य वे लोग अभी देखकर आ रहे थे, उससे इसमें केवल इतना अन्तर था कि रुपहली चटकीली धूप की जगह प्रभात की पहली सुनहली सिंदूरी सी किरणें अधिक गहरे नीले जल पर छा रही थीं और ऊपर हल्के नीले आकाश में पक्षियों की पक्षियाँ ।

वृद्धा ने अपने श्रान्त नेत्र विस्मय से खोल-चित्र को देखा, उसके उपयुक्त तारीफ़ के शब्द उसे न सूझ सके । सविता ने माँ के बदले भी अंग्रेज़ी में बहुत कुछ कहा ।

दूसरा चित्र था ‘गौरव की वस्तु’ ! मैले कुचैले फटे पुराने वस्त्र, झुर्रियों से भरा चेहरा, एक वृद्ध फूल से सुन्दर बालक को गोद में लिये । उसकी आँखें अभिमान से चमक रही थीं । यह तस्वीर माँ को बहुत पसन्द आई ।

हांजी चाय ले आया । सविता ने हँसकर कहा—‘वाह ! माँजी को मुसलमान के हाथ की चाय पिलाइयेगा ?’

प्रद्युम्न अपनी भूल पर लज्जित हो गया । उसने पूछा—‘आजकल आप क्या कर रही हैं ? कालिज तो आप छोड़ चुकी हैं ?’

स्नेह का उलाहना देते हुए माँ ने कहा—‘कहाँ; एक एम० ए० कर चुकी है, अब फिर कोई दूसरा एम० ए० कर रही है ।’

अपनी इस प्रशंसा की बात को उड़ा देने के लिये सविता ने कुछ विवशता दिखाते हुए पूछा—‘इसमें क्या हर्ज है, आखिर करे क्या ?’

माँ द्रवित स्वर में बोलीं—‘पहिले ही इतनी कमज़ोर है; इस पर और पढ़ाई का ज़ोर !’

सविता ने हँस दिया—‘अच्छा ! मैं प्रद्युम्नजी से तस्वीर बनाना सीखूंगी । उससे तो कमज़ोरी नहीं होगी ? क्यों आप सिखायेंगे ?’

‘क्यों नहीं—आप अवश्य सीखिये’—प्रद्युम्न ने उत्तर दिया,

२

जब सविता ने एट्रेंस पास किया था, उसी वर्ष माँ ने उसके विवाह की बात उठाई थी परन्तु पिता ने इस ओर कान न दिया । एफ़. ए. पास कर लेने के बाद वह बात उसने और अधिक ज़ोर से उठाई परन्तु सविता के पिता को योग्य वर तालाश करने की कुछ जल्दी न हुई । पिता चाहते थे, लड़की को मानसिक विकास का पूर्ण अवसर मिले ।

बी. ए. पास लड़की के लिए योग्य वर मिलना आसान काम नहीं । और उसकी राय के बिना कुछ कर देना भी ठीक नहीं जँचा । इतने में सविता ने एम. ए. पास कर लिया । एम. ए. पास करने तक सविता ने इतना अधिक साहित्य पढ़ डाला कि साधारण पंजाबी हिन्दू लड़की के समान केवल विवाह ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं रह गया ।

स्थूल जगत के अंतराल में जो एक सूक्ष्म जीवन है, जिसकी लीला मस्तिष्क के अपरोक्ष निस्सीम क्षेत्र में रची जाती है, उसमें उसका प्रवेश

हो चुका था । विवाह कर वह अपने जीवन को निम्नकोटि के क्षेत्र में परिमित नहीं कर देना चाहती थी । वह जीवन के उस अदृश्य परन्तु अनुभूति-मय स्रोत, काव्य, को नहीं छोड़ देना चाहती थी, जिसमें अतीन्द्रिय भाव से सभी कामनाओं की तुष्टि हो सकती है । उस इच्छा के देश को छोड़, पर कटाकर अपने आपको दूसरे के हाथ सौंप देने में क्या सुख था ?

विवाह तो एक दिन हो ही जायगा । कौमार्य एक दफे जाने के बाद लौट नहीं सकता—तो फिर कौमार्य के इस अधिकार को जितने दिन रक्खा जा सके, अच्छा है । इस मीठे वैराग्य को जितने दिन भोगा जा सके, अच्छा है ।

प्रेम की आवश्यकता का अनुभव उसे न हुआ हो सो नहीं । जीवन वीणा का यह तार उसके हृदय में झनकार कर चुका था । इस राग को उसने सुनने की चेष्टा की थी । निर्लिप्त भाव से गाने की भी उमंग मन में उठी थी, परन्तु इस राग का आधार बहुत ही सूक्ष्म था, पृथ्वी से बहुत ऊँचा था । उसे भौतिकता का रूप दे, वह मिट्टी में नहीं मिला देना चाहती थी ।

वायु की लहरों पर बहती हुई बादलों की नौका पर चढ़ उठने हृदय के आकाश में छाये अस्पृष्ट प्रेमी को पुकारा, कोई उत्तर न पा, उसने आसुओं का जल प्लावन बहा दिया, आहो जारी की ओधी चला दी, उसी में अन्तरध्यान हो उसने समझा, जीवन की सूक्ष्म वास्तविकता उसके हाथ आ गई ।

उसकी कविताओं की प्रशंसा भी खूब हुई थी । प्रणयार्थियों की कमी न होने से, उसे उनकी परवाह न थी, ज़रूरत नहीं मालूम पड़ती थी । उसने विडम्बना से मुस्कराकर कहा—‘मेरी कविता का लक्ष्य कला की आराधना है, और आत्मतुष्टि ।

कागज़ पर पेंसिल से अपनी कल्पना की सृष्टि रचनेवाले, समाज से विरक्त उदासीन युवक की तटस्थ गम्भीरता ने उसके मन में आदर का भाव उत्पन्न कर दिया। युवक की सौन्दर्य रचना की क्षमता देख सविता के मन में भी उसका अनुकरण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। जीवन के लिये यह कितना व्यापक और आकर्षक क्षेत्र है। संसार से कुछ आशा न कर, 'स्वान्तःसुखाय' सौन्दर्य की रचना यदि वह भी कर सके ! संसार उसकी रचना को मुग्ध दृष्टि से देखे ! यह कितने संतोष का विषय होगा।

सविता नित्य तीसरे पहर कागज़ पेंसिल ले शिकारे पर सवार हो प्रद्युम्न के बजरे पर डाइंग सीखने जाती। एक छोटी-सी मेज पर कागज़ जमा स्टूल पर बैठ वह बड़े यत्न से प्रद्युम्न के निर्देशानुसार रेखा अभ्यास करती और अपने बजरे पर लौटकर भी वह उसका अभ्यास करती। प्रद्युम्न के मुँह से एक Good कोई प्रशंसा का एक शब्द सुनने के लिये वह अपनी पूर्ण शक्ति व्यय कर देती।

प्रद्युम्न मार्तण्ड के मन्दिर का जो चित्र तैयार कर रहा था, वह अस्तोन्मुख सूर्य की किरणों में था। इसलिए इस समय प्रद्युम्न खिड़की के सामने बैठ चित्र पर कूची चलाने में मग्न रहता। सविता श्रद्धा से उसकी ओर देखती रहती। कुछ पूछने की ज़रूरत होने पर भी न बोलती। यहाँ तक कि संध्या हो जानेपर, बिना कुछ कहे ही घर लौट जाती।

उस दिन तीसरे पहर बादल हो जाने से मार्तण्ड का चित्र बनाने के लिये सूर्य का प्रकाश अनुकूल न था, प्रद्युम्न को फुर्सत थी। वह सविता की बगल से झुक उसे रेखाओं के विषय में समझा रहा था। उसके श्वास से सविता के माथे पर छिटके हुए केश थिरक-थिरक जाते, उसके गरम श्वास का स्पर्श सविता की कनपटी और गर्दन पर अनुभव हो रहा था। इस स्पर्श से सविता के हाथ में एक शिथिलता सी आ

जाती। पेंसिल उसकी उँगलियों में बार-बार हिल जाती। पेंसिल के हिलने से रेखाओं में अंतर आ जाता और इसके लिये प्रद्युम्न उसे निर्मम भाव से डाँट देता। प्रद्युम्न की यह अभद्रता सविता की दृष्टि में सरलता और निष्कपटता थी, बल्कि उसमें यथेष्ट माधुर्य था।

प्रद्युम्न ने खीझकर कहा—‘यह तुम्हारा हाथ हिल क्यों जाता है ?’ सविता की उँगलियों को जोर से थामकर उसने बताया—‘यों रखिये।’

सविता परदे के जगत की कुमारी नहीं थी। उसने अनेक अवसरों पर स्त्रियों और पुरुषों से हाथ मिलाया था और उसमें किसी प्रकार की भिन्नता उसे अनुभव नहीं हुई। परन्तु प्रद्युम्न के हाथ के छू जाने से उसे न जाने कैसा अनुभव हुआ ? उसके हाथ से पेंसिल गिर पड़ी। प्रद्युम्न ने पूछा—‘क्या थक गई ?’

प्रद्युम्न ने हाँजी को पुकार कर चाय लाने के लिये कहा और समीप कुर्सी पर बैठ वह उत्साह से सविता को रेखाओं का महत्व समझाने लगा। उसने कहा—‘सौन्दर्य रंग में भी है और आकृति में भी। आकृति का सौन्दर्य रंग के सौन्दर्य से अधिक गम्भीर है।’

सामने शीशे के जार में रखी हुई तीन कमल की कलियों की ओर संकेत कर उसने कहा—‘देखिये, इन फूलों का रंग बहुत सुन्दर है। लेकिन यदि इनकी प्रतिमूर्ति हम पत्थर में अंकित कर दें तो वह भी कम सुन्दर न होगी। सौन्दर्य का प्रधान कारण इनकी निर्दोष गोलाइयाँ और इनके नाल की लोच है। साहित्य में न जाने कितनी चीजों की उपमा कमल से दी जाती है जिनमें कमल का रंग नहीं होता। उनमें केवल इनकी वर्तुल रेखाओं की कोमलता देखकर ही हम मुग्ध हो जाते हैं। जिस समय हम चित्र में मुख या अवयव की भंगिमा से कोई भाव व्यक्त करना चाहते हैं, उस समय रेखा में बाल भर अन्तर ला देने से ही सब कुछ बदल जाता है। रेखा ही सब कुछ है। कागज़ का यह टुकड़ा है, इस पर कुछ नहीं। यह पेंसिल लेकर यों दो वक्र रेखाएँ

खेंच दीजिये, आँख हो गई ! कागज़ देखने लगा ! ज़रा परिवर्तन कर देने से यह आँख चकित, या क्रोधित, या मुग्ध हो सकती है । और इसमें इस ढंग से ज़रा बढ़ा देने से ही यह मछली बन जायगी । इस रेखा को यों न खींचकर यों खींच देते तो वृक्ष बन जाता । यह भी कहा जा सकता है, इस कागज़ में सृष्टि के सभी रूप हैं और उपयुक्त रेखा से वह प्रकट हो जाते हैं । सृष्टि का रहस्य रेखा या आकृति में ही है । यदि भिन्न-भिन्न रेखायें न हों तो सब एक सात, सब शून्य ही हो जाय ।’

हाँजी चाय रख गया । सविता प्याले में चाय डालने लगी । सविता के मुख की ओर बिना देखे प्रद्युम्न ने कहा—‘तुम्हारी उँगलियाँ बहुत सुन्दर हैं । तुम्हारा चायदानी पकड़ने का ढंग बहुत कलापूर्ण है, खासतौर पर यह एक उँगली से ढक्कन को दबाना बहुत अच्छा मालूमदेता है ।’

सविता को रोमांच हो आया । उसका हाथ हिल गया, चाय मेजपोश पर गिर गई । सविता अपनी इस बेमौक़े की शिथिलता से भेंप गई । प्रद्युम्न ने निरपेक्ष भाव से कहा—‘कुछ परवाह नहीं, कोई हर्ज़ नहीं ।’

उसके स्वर में सविता के शैथिल्य की अनुभूति का कुछ भी आभास न था ।’

प्रद्युम्न निरंतर सविता की उँगलियों की ओर देखता रहा । जब चाय के दोनों प्याले बहुत शनैः शनैः चाय डालने पर भी भर ही गये सविता ने चायदानी रख दी । प्रद्युम्न ने सविता के मुख की ओर आँख उठाकर कहा—‘एक दिन मैं तुम्हारी उँगलियों का (Sketch) आलेख्य बनाऊँगा ।’

दूसरे दिन सविता जब अपने यहाँ आलेख्य का अभ्यास करने बैठी, अपनी उँगलियों को देखकर उसका मन कल्पना-लोक में जा माधुर्य की सृष्टि करने लगा । ध्यान बिखर जाने के कारण वह कुछ भी न कर सकी पर इस असफलता के कारण उसका मन दुखी न हुआ ।

तीसरे पहर मौसिम बहुत अच्छा था। आकाश ऐसा नीला, मानों डल भील का पानी ऊपर चढ़कर फैल गया हो। मार्तण्ड के मन्दिर के ऊपर बादल का एक झालरदार सुनहरी टुकड़ा लटक रहा था। सूर्य की तिछीं किरणों में मन्दिर और कलश पर छाया और प्रकाश का भेद खूब स्पष्ट हो रहा था।

प्रद्युम्न का सामान तैयार था। वह स्टूल पर बैठना ही चाहता था, इसी समय सविता आ पहुँची। सविता ने कहा—‘आज तो आकाश आपके पेन्टिङ्ग के खूब अनुकूल है।’

प्रद्युम्न ने कमल के पत्ते पर एक कली रखकर कहा—‘आज इसका आलेख्य कीजिये। पहिले खूब ध्यान से देखकर एक-एक रेखा को हृदयंगम कर लीजिये।’

सविता के मुख पर अपनी तीव्र दृष्टि गड़ाकर उसने समझाया—‘कागज़ पर उतारने से पहिले आकृति को हृदयंगम करना जरूरी है।’

सविता को अनुभव हुआ, उसकी मुखाकृति को प्रद्युम्न की दृष्टि आत्मसात किये ले रही है। अपनी त्वचा पर उसे प्रद्युम्न की दृष्टि का स्पर्श अनुभव हो रहा था।

मार्तण्ड की छाया ठीक होते ही प्रद्युम्न खिड़की के सामने बैठ अपने पेन्टिङ्ग में रत हो गया। सविता यत्न करने पर भी अपना ध्यान कमल के पत्ते और कली पर न लगा सकी। उसके मस्तिष्क में रक्त के बेग के कारण उष्णता अनुभव हो रही थी। सामने देख वह सोचने लगी, यदि कोई चित्रकार सौन्दर्य के इस स्रष्टा का चित्र अंकन कर सके तो निश्चय ही वह कला का एक अद्भुत नमूना होगा। ध्यान को एकाग्र कर वह कागज़ पर रेखा खींचने का यत्न करती परन्तु न ध्यान जमता न हाथ ही। प्रायः एक घण्टा व्यतीत हो गया। इस बीच में केवल एक बेर सिर फिराकर प्रद्युम्न ने पूछा—‘कुछ बना?’

सविता ने कहा—‘बना रही हूँ’—परन्तु पेंसिल की अपेक्षा वह खड़ ही अधिक चला रही थी ।

सविता प्रद्युम्न को बिना टोके ही चली जा रही थी परन्तु उस ने पुकार कर कहा—‘चली जा रही हो ?’ तो आज यह समाप्त हो गया । अब दो-चार रोज़ तुम्हें अधिक सहायता दे सकूँगा । ठहरो न, तुम्हें छोड़ आऊँगा ।’

वे दोनों शिकारे में साथ-साथ बैठे जा रहे थे । प्रद्युम्न के कहने से हाँजी शिकारे को मजनू के पेड़ों के बीच से ले चला । दोनों ओर लहराते हुए मजनू के पेड़ों के बीच से उनका शिकारा जा रहा था । जल की सतह पर कमल इस तरह छा रहे थे कि पानी कहीं दिखाई न पड़ता था । कमल के फूल दबते चले जाते थे और शिकारा उन पर से फिसलता चला जा रहा था ।

प्रद्युम्न ने अर्धउन्मीलित नेत्रों से सामने की ओर देखते हुए कहा—‘मध्यकालीन यूरोप का एक चित्र है ‘वीनस का सागरोद्भव’ (Venus rising from the sea) । मेरे विचार में यदि इस पर्वत की छाया में कमल आच्छादित जल से मोहिनी का उद्भव पैट किया जाय तो बहुत माकूल चित्र बने ।’

सविता ने पूछा—‘आप अब इसी चित्र को क्यों आरम्भ नहीं करते ?’

प्रद्युम्न कमलों के विस्तार पर से दृष्टि हटाये बिना ही बोला—‘कल्पना के आधार पर ऐसा चित्र जब कभी भी बन सकता है । यहाँ आने का मेरा प्रयोजन कुछ प्रकृति और कुछ मनुष्य शरीर के चित्रों का बनाना है ।’

सविता ने पूछा—‘अब कौन-सा चित्र शुरू कीजियेगा ?’

प्रद्युम्न ने उसी तरह ध्यान मग्न रहकर उत्तर दिया—‘मैं एक निरावरण युवती का चित्र बनाना चाहता हूँ ।’

सविता का चेहरा लाल हो गया और नेत्र झुक गये ।

अपनी भूल का ध्यान आने पर प्रद्युम्न ने सविता की ओर देख कर कहा,—‘मैं कला की दृष्टि से बात कर रहा हूँ । जब हम सृष्टि की अन्य सुन्दर वस्तुओं से आशंकित नहीं होते तो मनुष्य शरीर में ऐसी कौन-सी बात है ? नारी एक व्यक्ति के लिये मातृत्व की अनुभूति उत्पन्न करती है, दूसरे के लिये वह अन्य दृष्टि से काम्य वस्तु हो सकती है । कलाकार के लिये वह लावण्य पुंज मात्र है । यही बात पुरुष के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है ।’

प्रद्युम्न के इस तटस्थ भाव से सविता का संकोच जाता रहा । बहुत देर तक वह इस बात को सोचती रही । समय-समय पर प्रदर्शनियों और पत्रिकाओं में देखी हुई अनेक निरावरण छवियाँ कल्पना में उसके सामने आकर नाचने लगीं । उनमें अब उसे एक नया सामन्जस्य, एक नई कला दिखाई पड़ने लगी । स्नान करते समय या आइने के संमुख जाते समय उसे एक अद्भुत विचार घेर लेता । आशंका होती, शायद वह आवश्यकता में अधिक कृप है, उसके केश यदि कुछ और लम्बे होते यदि उनका रंग कुछ और चमकीला काला होता, वे घुंघराले होते ! किसी भी व्यक्ति को देखने पर उसकी दृष्टि बहुत गहरी जाती । वह उसे कला की दृष्टि से देखने का यत्न करती । शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के अनुपात का, उनके एकांगिक सौन्दर्य का भी खयाल करती । जर्मनी के नग्न समाज के प्रति उसकी विशिष्ट विरक्ति दूर हो गई ।

प्रद्युम्न उसे निर्जीव पदार्थों, पशु-पक्षियों के चित्र बनाने को कहता परन्तु वह अपने यहाँ लौटकर मनुष्य शरीर के चित्र बनाने की चेष्टा करती । भिन्न-भिन्न अंगों को स्वस्थ और उनके उचित अनुपात में देखकर उसे बहुत संतोष होता ।

×

×

×

हाँजी की सहायता से प्रद्युम्न का काम बन गया। एक कश्मीरी सुन्दरी युवती प्रतिदिन तीन घण्टे उसके सामने बैठने के लिये आती थी। दस बजे से एक बजे तक का समय, जिस समय बजरे में काफ़ी प्रकाश रहता, प्रद्युम्न पेंटिंग में खर्च करता। संध्या समय बिलकुल फुर्सत रहने से प्रद्युम्न सविता को खूब सहायता दे सकता था परन्तु अब अधिकतर आलोचना या बात-चीत ही होती। सविता के लिये चित्रा-कन के अभ्यास की अपेक्षा प्रद्युम्न के यहाँ जाना ही मुख्य प्रयोजन हो गया।

सविता को न जाने क्यों उसके परोक्ष में आकर चित्र उतरवाने के लिये संमुख बैठनेवाली कश्मीरी युवती से ईर्ष्या होती थी। कई दफ़े उसकी इच्छा हुई कि प्रद्युम्न से उस अधूरे चित्र को दिखाने के लिये कहे। परन्तु नग्न चित्र देखने की इच्छा प्रकट करने के लिये उसकी जिह्वा जड़ हो जाती। उसका मन चाहता था, वह प्रद्युम्न के बजरे को घेरे रहे; किसी भी दूसरी स्त्री को उस ओर ताकने न दे। वह दो बजे आ जाती और प्रायः साँझ तक वहीं बनी रहती।

माँ ने लाइली बेटी को कभी किसी बात टोका न था परन्तु लड़की का यों विलम्ब से आना उसे सुहाता न था। माँ ने कहा—‘सविता जरा जल्दी आया करो तो कुछ घूमने फिरने का भी समय रहे। यहाँ आकर यदि स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो लाभ ही क्या?’

सविता को कभी झूठ बोलने की आवश्यकता न पड़ी थी, न उसे उसका अभ्यास था। अब वह प्रायः माँ के पूछने पर काश्मीर आई हुई किसी सहेली के साथ घूम आने की बात बना देती। परन्तु समय सब प्रद्युम्न के ही यहाँ व्यतीत हो जाता।

उस रोज सविता जान-बूझकर एक बजे से पहिले ही आ पहुँची। उस समय वह कश्मीरी नवयुवती सुन्दरी बजरे से लौट रही थी। उसका छुरहरा शरीर, अस्खलित यौवन, सद्यप्रस्फुटित पुष्प के समान सुन्दर

जान पड़ता था । उसे देख सविता ने वितृष्णा से मुख फेर लिया । मन में उसने कहा—इसमें न जाने क्या रखा है ?

प्रद्युम्न यह सब देख रहा था । उसने पूछा—‘क्यों क्या बात है ?’

सविता ने उद्विग्न स्वर में कहा—‘यही है न, जिसका तुम चित्र बना रहे हो ।’

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—‘हाँ ! क्यों ? उसमें क्या बुराई है ?’

सविता ने क्रोध को दबाते हुए कहा—‘तो इसमें अच्छाई ही क्या है ?’

प्रद्युम्न—‘क्यों, प्रकृति से सौन्दर्य का बरदान पाना क्या लज्जा का विषय है ?’

खीझकर सविता ने कहा—‘तो क्या इसका सौदा करे इन्सान ?’

प्रद्युम्न ने आश्चर्य से पूछा—‘सौदा ? सौदा कैसा ? परन्तु सौन्दर्य जैसी सम्पदा को छिपाने का क्या कारण ? और फिर सौदा कैसा ? क्या कोई सौन्दर्य का मूल्य दे सकता है ? मैंने इसे पचास रुपये दिये हैं परन्तु योरुप में वह इसी सिटिंग के लिये मामूली तौर पर चार पाँच सौ रुपया पा सकती थी । यदि उसकी अच्छी एक छवि बन सके, यदि इस नश्वर शरीर के सौन्दर्य की शाश्वत स्मृति रह सके तो वह कितनी आत्माओं का संतोष कर सकेगी ? अच्छा आओ, इस पेटिंग को देखो कैसा बना है ?’

सविता के मन की इच्छा पूर्ण हुई । परन्तु आज इस ओर ताकने को उसका मन न चाहता था । चित्र को देखकर वह अपलक रह गई । एक अपूर्व सुन्दरी युवती आदम कद आइने के सामने खड़ी स्वयम अपनी ही छवि देखकर चकित हो रही है । उसे मालूम हुआ—मानो उस काश्मीरी युवती के सन्मुख वह पददलित हो गई । आँसू इकट्ठे होकर उसके गले में भर आये । ओंठ दबा उन्हें पी, विक्षिप्त भाव से वह एक कुरसी पर बैठ गई ।

प्रद्युम्न ने पूछा—‘आज डाइंग नहीं करोगी ?’

सविता से कुछ कहते न बना । यदि मुँह खोलती तो उसमें से क्रन्दन का चीत्कार निकल पड़ता । उसने सिर हिलाकर इनकार कर दिया ।

प्रद्युम्न ने खीमे हुए स्वर में कहा—‘उस युवती पर तुम्हारा क्रोध अकारण है ।’

सविता ने गहरा साँस लेकर कहा—‘सौन्दर्य की आराधना में पैसे का क्या सवाल ?’

प्रद्युम्न ने दूसरी कुरसी पर बैठते हुए उत्तर दिया—‘ठीक है, उस स्त्री के लिये यह सौन्दर्य की आराधना नहीं थी ।’

सविता ने विजय के स्वर में कहा—‘यही तो बात है, उसने अपने सौन्दर्य का सौदा किया है ।’

प्रद्युम्न ने एक सिगरेट जलाकर बहुत-सा धुँआ छोड़ते हुए शान्त स्वर में कहा—‘यदि संगीतज्ञ अपने गले के माधुर्य से कुछ कमाले, या चित्रकार अपनी उँगलियों की कला से कुछ अर्जन करे, या पहलवान अपनी शारिरिक शक्ति से इनाम पाने की चेष्टा करे, तो उसमें कुछ भी बुरा नहीं, निन्दा का कोई कारण नहीं । लेकिन रूपवती यदि अपने रूप के प्रभाव से कुछ पाजाय तो वह महापाप है, ...क्यों ?’

इस अज्ञात युवती के प्रति प्रद्युम्न की सहानुभूति सविता को फूटी आँखों न सुहा रही थी । उसने बात समाप्त करने के लिये कहा—‘यों तर्क करने से बात बहुत दूर तक पहुँच सकती है । सभी जगह एक ही नुसखा नहीं चल सकता । औचित्य की एक सीमा है ।’

प्रद्युम्न अपने संगृहित चित्रों का एक एलबम उठा लाया । उसमें से ‘रोरिक निकोलस’ के अनेक चित्र सविता को दिखाकर उसने कहा—‘मुझे रोरिक के रूपक की ओर संकेत करने वाले चित्र बहुत पसन्द हैं । इनमें से विशेषकर ‘पथदर्शक’ और ‘शान्ति पताका’ । इसी प्रकार के

दो-चार चित्र मैं भारतीय संगीत के रूपक लेकर बनाना चाहता हूँ; पर अभी इस विषय में अपनी कल्पना से मैं संतुष्ट नहीं हो सका ।’

सविता ने कहा—‘देर हो रही है चलूँ, माँ नाराज़ होंगी ।’

एलबम बन्द करते हुए प्रद्युम्न बोला—‘ठहरो जाना, चाय पीकर जाना । तुम बहुत थकी हुई हो ।’

सविता ने पूछा—‘अभी तो आप उसके दो एक पेंटिंग और बनायेंगे ।

प्रद्युम्न ने सिर हिलाकर कहा—‘न, मुझे एक और चित्र निरावरण बनाना है परन्तु उसके लिये भाव पूर्ण और चेतन मस्तिष्क चेहरे की ज़रूरत है, जिसे कह सकते हैं ‘सजग मस्तिष्क का सौन्दर्य वह उस औरत में नहीं है ।’

प्रद्युम्न उठकर बाहिर हाँजी को चाय बनाने का हुक्म देने गया । उस समय सविता ने एक गहरा सांस लिया । उसकी आँखों से रुके हुए आँसू ढुलक पड़े । अपनी निर्बलता प्रकट होने के भय से उठ, समीप मेज पर रखे हुए जग से कमल के फूल निकाल उसने खिड़की में से बाहिर मुँह धो डाला । वह खूँटी पर से तौलिया ले मुँह पोंछ ही रही थी उसी समय प्रद्युम्न लौट आया । उसने पूछा—‘क्यों मुँह क्यों धो डाला ? क्या गरमी मालूम हो रही है, खिड़की खोलदूँ ?’

सविता ने भरीई हुई आवाज़ में उत्तर दिया—‘नहीं तो ।’

प्रद्युम्न ने ध्यान से सविता की ओर देखकर कहा—‘क्यों क्या कुछ जुकाम है; आवाज़ भारी क्यों है ?’

सविता कुछ उत्तर न दे, जग के शेष जल में कमल के फूलों को पैठाने लगी ।

प्रद्युम्न ने कहा—‘तुम्हारी यह उँगलियाँ इन कलियों पर बहुत भली मालूम होती हैं, इनका एक स्केच कैसा अच्छा बने’ ?

कुरसी पर बैठते हुए सविता ने कहा—‘मुझे क्या मालूम’ ?

चाय समाप्त होने पर प्रद्युम्न ने घड़ी की ओर देखकर कहा—
‘तुम्हें देर तो नहीं हो रही, माँ नाराज़ न हों?’

सविता ने उत्तर दिया—‘अभी जाती हूँ।’

पन्द्रह मिनट और बीत गये। प्रद्युम्न ने कहा—‘अंधेरा हो जायगा, चलो तुम्हें छोड़ आऊँ।’

सविता ने कुर्सी पर बैठे ही बैठे धीमे स्वर में कहा,—‘चलती हूँ।’

एक बात उसके हृदय से निकल कर उसकी जिह्वा पर आना चाहती थी परन्तु जिह्वा उसकी तीव्रता को न सहार सकती थी।

अंधेरा हो जाने पर ही वे लोग चिनार नाले पहुँच पाये।

×

×

×

अक्टूबर का महीना आ पहुँचा। सविता के लिये अब अधिक दिन श्रीनगर में ठहरना कठिन था। माँ तो अग्रस्त से ही घबरा रही थीं। प्रद्युम्न डल भील छोड़ अपना बजरा जेहलम में ले आया था। दोनों के बजरो में दो फर्लांग से अधिक अंतर नहीं था। सविता और माँ के श्रीनगर से चलने में केवल दो ही दिन रह गये थे परन्तु प्रद्युम्न के जाने का अभी कोई सवाल न था। उसने अपने चित्र पेरिस की दर्शनी के लिये भेज दिये थे। अब वह हेमन्त ऋतु में हिम की श्वेत शदर ओढ़े काश्मीर के कुछ चित्र बनाना चाहता था।

श्रीनगर आते समय सविता बेफ़िक्री, आत्मतुष्टि, तटस्थता और अभिमान लिये रानी बनकर आई थी। आज उससे कोसों दूर, वह अपने ही सन्मुख बन्दी सी, पराजित सी, दलित सी हो रही थी। परन्तु ज़ार दुखों का दुख यह था कि विजेता अपनी विजय की ओर आँख ठाकर भी देखना न चाहता था। मानो ‘वह’ विजय करने लायक कोई चीज़ ही न थी। संसार में इस उपेक्षा से अधिक असह्य और क्या होगा? जो हो, अब उसे निर्णय करना ही था.....या तो अब, या कर कभी नहीं?

उस दिन उसने सीधे ही प्रद्युम्न से पूछ लिया—‘आखिर सौन्दर्य का प्रयोजन सृष्टि में है क्या ? जो तुम उसे इतना महत्व देते हो ?’

प्रद्युम्न ने ध्यान से शून्य की ओर देखकर कहा—‘सौन्दर्य का प्रयोजन.....मैं तो कहूँगा, सौन्दर्य सृष्टि का गुण है । सृष्टि की गति को, सृजन-शक्ति को चालू रखना इस गुण का प्रयोजन है । सृष्टि का सौन्दर्य ही उसके जीवन की स्फूर्ति है । अपनी सौन्दर्य शक्ति के द्वारा ही सृष्टि अपनी गति को जारी रख पाती है । सृष्टि के चर-अचर में सौन्दर्य अपने आपको चरितार्थ करता है । यही सृष्टि के जीवन की गति का रहस्य है ।

सविता ने बात को समाप्त न होने देने के लिए पूछा—‘तो क्या सृष्टि के सभी प्राणी सुन्दर हैं ?.....आकर्षक हैं ?’

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—‘ज़रूर ! कविता या कला के प्रदर्शन के लिए हम चाहे एक आध व्यक्ति या जीवन को रूपक चुन लें परन्तु सौन्दर्य स्त्री मात्र में और पुरुष मात्र में व्यापक है, जैसे आकाश और ऊष्णता सभी पदार्थों में व्याप्त हैं ।’

सविता ने एक और चोट की, उसने पूछा—‘आपको तो आकर्षण शायद उस कश्मीरन के अतिरिक्त और कहीं दिखाई नहीं दिया ?’

प्रद्युम्न ने ज़रा हँस दिया—‘सो बात नहीं, पर तुम्हारा क्रोध उस पर से हटा नहीं ! वह सुन्दर ज़रूर है, और बहुत सुन्दर है परन्तु उसका सौन्दर्य ऐन्द्रिय-आकर्षण को चेतन करने के ही योग्य है । मैंने उससे अधिक आकर्षक सौन्दर्य क्यों नहीं देखा ! जागरित मस्तिष्क को केवल आकृति और रंग का ही लावण्य आकर्षित नहीं करता । वह रूप के लावण्य के साथ चेतन मस्तिष्क की आभा भी चेहरे पर देखना चाहता है । तुम्हारे ही मुख पर जो करुण और सौम्य की आभा है वह किसी संस्कृत मस्तिष्क को छुए बिना नहीं रह सकती ।’ सविता से रहा न गया, वह रो पड़ी ।

प्रद्युम्न ने समझा, सविता अपने प्रति व्यक्तिगत संकेत से नाराज़ होगई। दुःखित हो उसने कहा—‘तुम किसी बात पर तटस्थ समीक्षक की दृष्टि से विचार क्यों नहीं कर पातीं ? इसमें व्यक्तिगत बात तो कुछ भी न थी ?’ इस सवाल का असर सविता पर उलटा ही हुआ। उसके रोने का वेग बाँध तोड़ कर बह निकला।

बहुत देर तक ध्यानमग्न रह प्रद्युम्न बोला—‘मुझे अफसोस है अपनी ग़लती पर। अब मैं किसी ऐसे प्रसंग पर बात न करूँगा। लेकिन यह तरीका कलाकार या कवियों का नहीं।’

सविता निराशा की चोट से बिलखकर उठ खड़ी हुई, उसने कहा—‘मैं जाती हूँ।’

प्रद्युम्न चलकर उसे छोड़ आने को प्रस्तुत हुआ। सविता ने कहा—‘रहने दीजिये, क्यों कष्ट कीजियेगा।’

कुछ न समझ, व्यथित हो प्रद्युम्न ने कहा—‘बहुत अच्छा, आपकी इच्छा न हो तो रहने दीजिये।’

सविता दाँतों से ओठ दबा बजरे से उतर गई। उसका मन चाहता था, अपना सिर पीट ले, सिर के बाल नोच ले, जेहलम की सतह में समा जाय।

वह सोच रही थी—यह व्यक्ति है जो दावा करता है कलाकार होने का……सौन्दर्य और आकर्षण की मीमांसा करने का !



हिंसा

खिजियार की बड़ी तारीफ़ सुनी थी। दो सप्ताह वहाँ एकान्त में रहकर अपनी पुस्तक की पाण्डुलिपि को दोहरा देना चाहता था। डलहौज़ी में चम्पा रियासत का प्रतिनिधि रहता है। उससे खिजियार के डाकबँगले में रहने की इजाज़त चाही। मुझे समझाया गया, एक नया बना बँगला आते-जाते अफ़सरों के ठहरने के लिये सुरक्षित है। दूसरे बँगले में एक स्काच फ़ौजी अफ़सर ठहरा हुआ है शेष तीसरे बँगले में मैं केवल दो सप्ताह ठहर सकता हूँ।

वहाँ पहिले से ही एक अंग्रेज़, और वह भी फ़ौजी अफ़सर, के मौजूद होने की ख़बर से एकान्त सुख भोगने की मेरी सम्पूर्ण आशा किरकिरी हो गई। सोचा, यह गोरा अकड़-अकड़कर मेरे सामने घूमेगा और सब कोई उसको सलाम करेगा, मेरी क्या इज्जत रह जायगी ?

डलहौज़ी में खिजियार जानेवाली उतार-चढ़ाव की चक्करदार सड़क पर छड़ी घुमाता, पत्थरों को ठोकर मारता चला जा रहा था। मन में यही उलझन लग रही थी। इच्छा होती थी, मेरे खिजियार पहुँचने के समय यह गोरा या तो सो रहा हो या भीतर अपनी शाम की चाय पी रहा हो, ताकि एक दफ़े मैं इज्जत से जाकर टिक भर सकूँ, शेष देखा जायगा।

लेकिन हुआ क्या ?—ज्यों ही पहाड़ी का अन्तिम मोड़ घूमकर खिजियार का खुला मैदान मेरी आँखों के सामने बिछ गया। सामने बँगले के बरामदे में रात की धारीदार पोशाक पहरे, एक गोरा शरीर को फैलाकर अँगड़ाई लेता दिखाई पड़ा।

अंग्रेजी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों में स्काच लोगो की अनेक विडम्बना पढ़कर भी उनके प्रति कोई विपरीत धारणा मेरे मन में नहीं बैठी थी ; वह सब तटस्थता एक क्षण में न जाने कहाँ चली गई, मन वितृष्णा से भर गया। उधर से नज़र हटा, मानों मैंने कुछ देखा ही नहीं, बाईं ओर के ऊँचे देवदारों पर अदृश्य पक्षियों को देखता हुआ मैं बँगले की ओर बढ़ा। बरामदे में पैर नहीं रख पाया था कि वह धिनौना अंग्रेज़ चिल्ला उठा—‘हैलो ! गुडडे, जैन्टलमैन !’

ज़बरदस्ती चेहरे पर मुस्कराहट लाकर जवाब दिया—‘गुडडे थैंक्यू ।’

इतने से उस भले आदमी को सन्तोष नहीं हुआ, बोला—‘सड़क बहुत खराब है, कहिये तकलीफ़ तो नहीं हुई ? लेकिन जगह देखिये कैसी सुन्दर है ! यहाँ पहुँच सब कीमत वसूल हो जाती है। कम-से-कम मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। इतना कह उसने उत्तर पाने की आशा में हँस दिया।

दिल में सोचा, पूरा स्काच है, दमड़ी को दाँत से पकड़ने-वाला सैर करने आया है लेकिन यहाँ भी ‘पूरी कीमत’ वसूल करने की बात नहीं भूला।

संक्षेप में उत्तर दिया—‘बेशक जगह ऐसी ही है। जैसा सुनकर आया था, वैसा ही पाया। मैं सदा एकान्त पसन्द करता हूँ।’

मेरे एकान्त प्रेम के प्रति अनावश्यक कौतूहल प्रकटकर, परिचय बढ़ाने के लिये स्काच ने दो-चार बातें और कहीं। बाहिर घास पर खड़ा-खड़ा मैं उससे बातचीत कर रहा था। अनजाने में उसके प्रति मेरी घृणा जाती रही।

स्काच ने बताया—वह भी एकान्त की खोज में दो मास का अवकाश पलटन से लेकर आया था । उसे सात सप्ताह अकेले बीत चुके थे, एकान्त की साध पूरी कर वह ऊब गया था । मेरा वहाँ पहुँच जाना उसका सौभाग्य था । उसने यह भी आशा प्रकट की कि उसकी उपस्थिति से मेरे एकान्त में विशेष विघ्न न पड़ेगी ।

अपनी बात काट अपनी कलाई की ओर देखकर उसने कहा—‘ग्यारह मील पैदल चलकर आप आये हैं, चाय का समय भी हो रहा है । आपके आदमी को तो देर लगेगी,—दस मिनिट में मेरी मामूली चाय तैयार हो जायगी । मैं अकेले चाय पीते-पीते उकता गया हूँ....’

भीतर गुसलखाने में हाथ मुँह धोते-धोते मेरा विचार स्काच के प्रति बिलकुल बदल गया, आदमी भला जान पड़ता है ।

चाय पीते-पीते उसने खिजियार के आस-पास का पूरा जुगराफ़िया मुझे समझा दिया । तीन वर्ष पूर्व वह भारत की पूर्वी सीमा—‘युवान’ में रह आया था, वहाँ का भी हाल उसने सुनाया । फिर दार्जीलिंग का कुछ जिक्र किया । मालूम होता था, उसकी ज़बान बेकार पड़ी-पड़ी चलने को बेचैन हो गई थी, वह थमना ही न चाहती थी ।

चाय की तिपाई के नीचे से धुर-धुराने का शब्द सुन मैंने भाँककर देखा—एक कबरी बिल्ली आकर बैठ गई है और अधिकार भरी दृष्टि से स्काच की ओर देख रही है । स्काच ने हँसकर कहा—हल्लो पूसी ! और एक तश्तरी में थोड़ा दूध डाल बिल्ली के सामने रख दिया । बिल्ली उसे जिह्वा से सपड़ने लगी । मैं उसकी ओर देख रहा था । बिल्ली अचानक चौंकी और पल मारते में वह बँगले के बरामदे में थी और उसके पंजों में थी एक चुहिया ।

स्काच ने कहा—‘मार लिया ।’ उसके स्वर में आर्द्रता का आभास था । मैंने उसके मुख की ओर देखा । उसके चेहरे पर भी एक दुविधा का-सा भाव दिखाई दिया । बिल्ली चूहे को मौत का खेल खिला रही

थी। मैं कभी बिल्ली कौ और देखता और कभी स्काच के चेहरे की ओर ! उसकी अधमुँदी आँखों और माथे की त्योरियों से जान पड़ता था वह गूढ़ विचार में मग्न है। बिल्ली बहुत देर तक अपना लोभ संवरण न कर सकी और गम्भीरता पूर्वक उस चुहिया को उदरस्थ करने लगी। स्काच ने करवट बदल अपना मुख उधर से हटा लिया।

इस बीच में हम दोनों परस्पर नाम धाम से परिचित हो चुके थे। उसका नाम था मैकफील्ड। वह डैवनशायर या यार्कशायर पल्टन में कैप्टेन था। कुछ देर विचार तन्द्रा में रहकर मैक फील्ड ने कहा—

‘आप लोगों की पूर्विय विचार धारा में अहिंसा को बहुत महत्व दिया गया है खैर……मैं अनुचित रूप से आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। आपके विश्राम में तो व्याघात नहीं हो रहा ?’

निश्चय दिलाने पर कि ऐसी आशंका की कोई गुंजाइश नहीं, मैक फील्ड ने कहना शुरू किया,—‘मैं कहूँगा यह हिंसा-अहिंसा की समस्या बहुत गूढ़ है। मैं समझता हूँ, संसार का सम्भव और विनाश इसी के अन्तर्निहित है। सभी दार्शनिक हिंसा को इसके व्यापक अर्थों में अति गर्हित बताते हैं परन्तु प्रकृति हिंसा के विना एक क्षण भी तो नहीं चल सकती। अभी यह देखिये, क्या इस बिल्ली को आप दोशी कह सकेंगे……?’

‘मैं आपका समय अधिक देर तक नष्ट नहीं करना चाहता परन्तु देखिये, इस महायुद्ध में मैं बाल्कान अन्तरीप में था—वहाँ हमारी स्थिति अच्छी नहीं थी। वहाँ कुछ दिन खूब नर संहार हुआ—और देखिये हम लोग नर रक्त को पवित्र बताते हैं !—वहाँ नर संहार करना ही हमारा कर्तव्य था। जिसने जितना अधिक नर संहार किया, उसकी उतनी ही अधिक प्रशंसा हुई। मुझे भी एक कास मिला। हमारे प्रति-द्वन्दी आस्ट्रियन लोग भी ऐसा ही कर रहे थे। हम जिन्हें मारते थे उनसे हमारा व्यक्तिगत कुछ द्वेष न था परिचय न था परन्तु उन्हें

मारकर एक सन्तोष होता था । मैंने हज़ारों को मरते मारते देखा परन्तु मैं कभी विचलित नहीं हुआ । वजह यह कि मुझे निश्चय था कि हम जो कर रहे हैं सत्य और न्याय की रक्षा के लिये कर रहे हैं । परन्तु अढ़ाई मास पूर्व जो घटना बन्नू में मेरी आँखों के सामने घटी उसे आपको सुनाना चाहता हूँ, उसने मुझे विचलित कर दिया । हाँ, आप विश्राम करने के लिये तो नहीं जाना चाहते ?

मेरे नकारात्मक उत्तर देने पर उसने फिर कहना शुरू किया—
‘अभी इस जनवरी की दो तारीख को हमारे ब्रिगेडियर कर्नल बेटिंग सुबह के समय पल्टन की परेड देखनेवाले थे । उस रोज़ धुन्ध इतना गहरा था कि कुछ न पूछिये । मार्च करती हुई कम्पनियों के कदम चाप का शब्द तो सड़क पर सुनाई देता था परन्तु दिखाई कुछ फीट की चीज़ भी नहीं देती थी । इसलिये ब्रिगेडियर साहिब की प्रतीक्षा में मैं सड़क पर ही खड़ा था ।

ब्रिगेडियर साहिब की कार आई । उन्हें सैल्यूट कर मैं उनके साथ-साथ आठ-दस कदम ही पल्टन की ओर बढ़ा होऊँगा—एक आदमी ताज़ी कुत्ते की तरह ब्रिगेडियर साहिब पर लपक पड़ा । मैं और मेरे अर्दली कुछ बीच बचाव करें कि उस आदमी ने ब्रिगेडियर साहिब की गर्दन पर हाथ की छुरी के तीन वार कर दिये ।

‘अपना रिवाल्वर निकाल मैंने उस आदमी पर तीन फायर किये । वह या अली ! कहकर गिर पड़ा । गर्दन पर दो हाथ पूरे बैठे थे—ब्रिगेडियर गिर पड़े थे । मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया । रक्त प्रबल बेग से जा रहा था परन्तु घाव ऐसी जगह थे कि कपड़ा कसकर रक्त को रोका भी नहीं जा सकता था । दो सार्जेंट और कुछ अर्दली लोग फायरों की आज्ञाव सुन घटना स्थल पर आ पहुँचे । ब्रिगेडियर साहिब की नाड़ी देखने पर हमें उसमें कुछ भी स्पन्दन अनुभव न हुआ, फिर भी उन्हें तुरन्त स्पताल पहुँचाने के लिए मैंने उन्हें कार में लिटाने का आर्डर दिया । ;

‘इस समय मुझे आक्रमणकारी का खयाल आया। एक अर्दली उस समय भी उसकी ओर रिवाल्वर ताने खड़ा था। समीप जाकर देखा उसके शरीर से भी रक्त बह रहा था। गोलियाँ उसकी पीठ और कन्धों में धँस गई थीं। वह अल्ला ही अल्ला पुकार रहा था। उसे भी स्पताल ले जाना आवश्यक था। कोई दूसरा उपाय न होने से उसके शरीर की मैली चादर में ही उसे लिपटवाकर कार के पीछे कैरियर पर बँधवा दिया। उस पठान के चेहरे पर भय का कोई चिन्ह न था। बड़ी शान्ति से, एक शहीद की भाँति, वह अपनी पीड़ा को चुपचाप सह रहा था।

‘स्पताल पहुँचने से पहिले ही ब्रिगेडियर साहिब के प्राण निकल चुके थे। फ़ोन पर खबर पा सिविल सर्जन और मैजिस्ट्रेट भी आ पहुँचे। उन्होंने पठान के जख्मों की रिपोर्ट लिखवाई और बयान लिया। पठान ने सलाम कर कहा—‘हुज़ूर हमको गोली करवा दो, बहुत दुआ देगा।’

‘मेरा भी बयान लिखा गया। मैंने कहा धुन्द की वजह से साफ तो कुछ दिखाई देता न था। लेकिन ब्रिगेडियर साहिब को जब मैंने सैल्यूट की उसी समय वह पठान मुझे सड़क से आता दिखाई दिया। उस सड़क पर किसी के आने-जाने से शक या एतराज़ की कोई वजह न थी। बाद में जो हुआ सो मैं आपको बता ही चुका हूँ।

‘मजिस्ट्रेट ने हिदायत की कि पठान की देखभाल अच्छी तरह से की जाय। भरसक उसे मरने न दिया जाय। सम्भव है, किसी भयंकर षड्यंत्र का इन्कशाफ़ हो।

‘हम लोगों का खयाल था, हो-न-हो यह पठान किसी वक्त ब्रिगेडियर साहिब के यहाँ नौकर रहा होगा और साहिब की किसी बात से अपना अपमान समझ मौका पर उसने बदला ले लिया। लेकिन उसके मुँह से कुछ और सुना।

‘अगले दिन जब मजिस्ट्रेट उसे फिर देखने आये वह शान्त और व्यवस्थित था। उसके शरीर से गोलियाँ निकाली जा चुकी थीं। वह अपनी प्रार्थना में रत था। पूछने पर उसने अपना नाम-धाम बता दिया। वह वज़ीरिस्तान के किसी गाँव का रहनेवाला था। उसका सगा सम्बन्धी या रिश्तेदार कोई शेष न था। गाँव वालों से भगड़कर वह बन्नू आ बसा। उसने कई जगह नौकरी की और ब्याह भी किया। किस्मत की बात—नौकरी छूट गई और औरत कोई भगा ले गया। कभी यहाँ, कभी वहाँ सड़क कूटने की मज़दूरी कर वह पेट भरता रहा। अब कमज़ोर हो जाने से यह काम इससे होता न था। चोरी उसने नहीं की यही जानकर मुझे विस्मय हुआ। इस तबके के पठान प्रायः चोरी में बहुत दक्ष होते हैं। वह धार्मिक वृत्ति का व्यक्ति जान पड़ता था।

‘जीवन में सुख की कोई आशा शेष न थी। यदि कोई आशा थी तो केवल मरकर बहिश्त पहुँचने की। लेकिन बहिश्त में सुख पाने के लिए भी तो उपाय चाहिये’। दान पुण्य के लायक उसके पास क्या रखा था, जिसे खुद खाना तक नसीब न हो। बदन के चीथड़े और एक छुरी, यही उसकी सम्पत्ति थी। पर मन में सुख और सम्मान की इच्छा थी। दो दिन जब उसे रोटी नहीं मिली तो उसने अपनी छुरी बेच देनी चाही। छुरी का कोई गाहक न मिला। निराश हो उसने छुरी से आत्महत्या कर अपने दुखों का अन्त कर देना चाहा परन्तु उसकी धर्म-भावना उसके मार्ग में आ खड़ी हुई। इस विचार से वह काँप उठा कि खुदकशी करके उसे कभी खतम न होनेवाली दोज़ख की आग में अनन्त काल तक जलना पड़ेगा। उमर भर उसने मुसीबत भेली परन्तु वह दोज़ख की आग में जलने के लिए तैयार न था।

‘भूखे पेट मृत्यु की प्रतीक्षा करते-करते एक दफे बहिश्त पहुँच दूध और शहद के दरिया के किनारे, खजूरों के बाग़ में, दाढ़ी में हूँ

के हाथ से सुगन्ध मलवाने के खयाल से वह मतवाला हो उठा। पर उपाय ? सोचते-सोचते उसे खयाल आया अगर वह गाज़ी हो जाय ? वह चलकर छावनी पहुँचा ताकि जुम्मे के रोज़ परेठ पर जा सबसे बड़े काफ़िर साहब को मार कर शहीद होजाय।

‘उसे आशा थी कि उसे तुरन्त गोली से उड़ा दिया जायगा। लेकिन हाय किस्मत ! गोलियों से शरीर चलनी होजाने पर भी वह शहीद न होपाया। एक गहरा और लम्बा श्वास लेकर उसने कहा— ‘ख़ैर अब फाँसी होजायगी।’

‘फाँसी के खयाल से वह भयभीत न था परन्तु उसे यह सम्मान-जनक नहीं जान पड़ता था। पठान का मुक़द्दमा अदालत में गया वहाँ भी मुझे बयान देना पड़ा। बयान देते समय मैं जानता था कि मैं उसे फाँसी के तख़्ते की ओर ले जा रहा हूँ। उसकी ओर आँख उठाकर देखने का मुझे साहस न हुआ।

उसे फाँसी का हुकुम होगया। मैं सिर लटकाये अदालत से लौटा—मानो मुझसे कुछ अनुचित कार्य होगया हो।

‘उस दिन से जब कभी मृत्यु या हिंसा का चर्चा किसी रूप में सुनता या देखता हूँ, मुझे उस गाज़ी की बात याद आजाती है। उसके घोर अपराध के प्रति घृणा न होकर मन में करुणा ही हो आती है। अच्छा अब बताइये, यदि इस बिल्ली को ही उठाकर फाँसी पर लटका दिया जाय ?

‘.....लेकिन क्या हत्यारों को यों खुला छोड़ दिया जा सकता है ?.....’

‘क्या हिंसा अहिंसा का विवेचन हम इरादे या विचार से कर सकते हैं.....’

समाज सेवा

विजय दशमी की आठ छुट्टियाँ मनाने के लिये नाथ लाहौर आया था और मैं उसके आतिथ्य में उपग्रह की तरह उसके साथ-साथ लटकता फिर रहा था ।

‘बन्देमातरम्’ में एक विज्ञापन पढ़ कर नाथ ने कहा—‘आज साँझ को एस. पी. एस. के. (Society for the promotion of scientific knowledge) के हाल में चलना होगा ।’

पूछा—‘क्यों वहाँ क्या है ?’

उत्तर मिला—‘एक लेक्चर है !’

लेक्चरों के प्रति नाथ के हृदय में ऐसा अनुराग उत्पन्न हो गया है, यह मैं न जानता था । पूछा—‘कैसा लेक्चर ?’

नाथ ने कहा—‘कुछ ठीक याद नहीं पर लेक्चर है । जादू के लालटैन से लेक्चर है, शाम के पाँच बजे । ‘बन्देमातरम्’ में विज्ञापन था । तुम्हें खयाल नहीं ?’

हँस कर मैंने कहा—‘जादू की लालटैन ! तो चलो सिनेमा ही क्यों नहीं चलते ? इस ज़माने में जादू की लालटैन तो ऐसे समझो जैसे बैलगाड़ी पर सफर करना ।’

नाथ ने उत्तर दिया—‘नहीं, तुम नहीं समझते ।’

मन में हँस कर रह गया । एक ज़माना था, नाथ हमारे कॉलेज के ‘चलते’ गिरोह का मनोनीत नेता था । उस समय यह शेख़ी उसी शोभा दे सकती थी । परन्तु अब नाथ लाहौर से दूर सहारनपुर में रहता है । यदि वह अब भी लेक्चर, सिनेमा और थियेटर के बारे में हम लोगों की अपेक्षा अधिक जानकारी का दवा करे तो दुस्साहस के अतिरिक्त और क्या कहा जायगा ?

मन ही मन कहा—‘देखो बेटा, देखो ! जादू की लालटैन ही देखो । सहारनपुर में कठपुतलियों का नाच देखते होगे, तुम्हारे लिये यही बहुत है । तुम क्या जानो ‘टाकी’ और ‘रिङ्क’ क्या बला हैं ?

हाल में विशेष भीड़ न थी । लेकिन नाथ कुर्सी पर न बैठ दाँई ओर की दीवार के सहारे ही खड़ा हुआ और मैं उसकी अर्दल में मौजूद था । व्याख्याता थे, प्रो० आदरे । व्याख्यान का विषय था—‘सभ्यता के विकास में नारी का स्थान !’

प्रोफ़ेसर आदरे ने दक्षिण द्वीपों के अर्ध जंगली समाज, आस्ट्रेलिया के बुशमैन तथा नीग्रो और रैडइण्डियन लोगों की सामाजिक व्यवस्था के चित्र दिखाकर यह बताया कि समाज में संयोजक और व्यवस्थापक का स्थान दरअसल नारी का है । पुरुष समाज निर्माण और सुव्यवस्था के लिये नारी का आभारी है और भविष्य में नारी फिर अपना स्थान ग्रहण कर समाज को पागल हो जाने से बचायेगी ।’

व्याख्यान बुरा नहीं था परन्तु मेरा ध्यान उसमें न लगा । नज़र उठाकर नाथ की ओर देखा—आपकी दृष्टि लालटैन के चित्रों की ओर नहीं बाँई ओर पहिली तीन आधी लाइनों में बैठी महिलाओं की ओर थी । विशेष निरूपण करने पर जान पड़ा, पहिली लाइन की पहिली कुर्सी पर ही उसका लक्ष्य था ।

कोहनी से टोहका देकर मैंने पूछा—‘क्या यही लेक्चर सुन रहे हो ?’

मेरे प्रश्न का उत्तर न दे उसने पूछा—‘जानते हो वह कौन है ?’

वह चेहरा मेरे लिये परिचित नहीं था । पूछा—‘क्यों ?’

एक गम्भीर निश्वास छोड़ नाथ ने कहा—‘देखते नहीं आधुनिक रमणी समाज में जिन तीन ‘तकारों’ सुशिक्षिता, सुसंस्कृता और सुलंकृता, का होना ज़रूरी है, उनका इसमें कितना प्राचुर्य है ?’

नाथ का कहना ठीक था । शास्त्र की व्यवस्था से युवती की आयु मुग्धावस्था को पार कर चुकी थी पर चेहरे पर मोह की मात्रा अभी यथेष्ट थी । जल के किनारे फूले हुए, वायु के झोंके से लहराते हुए कास के समान पग-पग पर लचकते हुए उसके बेत्र-लता के समान लचीले शरीर से लावण्य झड़ा पड़ रहा था । मुख के उस कच्चेपन से—मैं नहीं समझता वह पाउडर होगा—कौमार्य की पुष्टि हो रही थी । भीनी पोशाक, बिना फ्रेम की चिमटीदार ऐनक, संस्कृत के सब चिन्ह मौजूद थे ।

नाथ की ओर देखकर मैंने पूछा—‘प्रेम तरंग (Love wave) का जोर हो रहा है ।

गम्भीर मुद्रा से उसने उत्तर दिया—‘चुप रहो !’

व्याख्यान समाप्त होने पर जब वह रमणियों में श्रेष्ठ रमणी, ललित उपेक्षा से आधे सिर पर अंचल टिकाये, बिना बाँह का ब्लाउज पहिरे नाक पर चिमटीदार ऐनक को सम्भालते हुए चली तो नाथ मंत्र-मुग्ध की भाँति उसकी ओर देख रहा था ।

उपस्थिति जनता में हम लोगों के परिचित श्रीयुत विष्णु और श्रीमती विष्णु भी थे । पूछने पर पता लगा, उस भव्य रमणी रत्न का नाम था—कुमारी ‘ऊषा मेहता’ ।

नाथ ने विष्णु से पूछा—‘क्या उनसे परिचय नहीं हो सकता ?’

विष्णु ने परिचय की इच्छा का कारण जानना चाहा । मैंने समझाया, नाथ पर प्रेम-बाण चल गया है और वह भी प्रथम दृष्टि में ।

निरुत्साह की हँसी हँसकर विष्णु ने कहा—‘असम्भवम्’ वह देखने

में जैसे संगमरमर की मूर्ति है भीतर से भी वैसे ही ठण्डी और उद्रेक शून्य ।’

श्रीमती विष्णु ने अभिमान से ज़रा सिर ऊँचा कर कहा—‘उसने विवाह नकरने की प्रतिज्ञा की है । कितनी ही जगह वह इनकार भी कर चुकी है ।’

विद्रूप से विष्णु बोला—‘वह कामिनी का आधुनिक संस्करण है । पुराने ज़माने के ‘काम’ के पाँचों बाण उस पर व्यर्थ हैं ।’

नारी जाति के सम्मान की रक्षा के अभिप्राय से श्रीमती विष्णु ने विरोध में कहा—‘स्त्री समाज की सेवा को उसने अपने जीवन का व्रत बना लिया है । उसी में वह अपनी आयु लगा देना चाहती है । इसमें बुराई क्या है ?’ और भी अधिक उत्साह से उन्होंने कहा—‘भाई विवाह वह कभी नहीं कर सकती । विवाह किस लिये किया जाता है, यह वह जानती ही नहीं ।’

सहानुभूति से मैंने नाथ की ओर देखा, वह पर्वत की भाँति अचल था । उसने कहा—‘आप एक दफ़े उन्हें अपने यहाँ निमंत्रित कीजिये शेष देखा जायगा ।’

निमंत्रण किस बहाने दिया जाय ? यही समस्या थी । नाथ को कभी-कभी ऐसी सूझ जाती है कि जिस पर किसी राष्ट्र का बनना बिगड़ना निर्भर हो सकता है । विष्णु के कंधे पर हाथ रख उसने कहा—‘क्यों नहीं तुम मेरे विदेश से लौटने के उपलक्ष्य में एक पार्टी दे देते ?’

ख़ूब ! चीनी बनाने के काम का अनुभव प्राप्त करने के लिये नाथ छः मास जावा द्वीप में रह आया था । वहाँ से लौटे हुए भी उसे प्रायः नौ मास हो चुके थे । तब से वह अपने चीनी के कारख़ाने में व्यस्त था । यह था उसका विदेश से लौटना ! इसमें इतना सत्य ज़रूर था कि जावा से लौटने के बाद से नाथ ने विष्णु का आतिथ्य ग्रहण न किया था ।

एक निमन्त्रण पत्र गढ़ा गया—

‘प्रिय बन्धु श्री प्रमोदनाथ के दक्षिण द्वीपों के भ्रमण से लौट आने

के उपलब्ध में.....बार.....तिथि.....को संध्या समय चार बजे आप मेरे मकान.....गली में चाय गोष्ठी में सम्मिलित होने की कृपा कीजिये—अति कृपा होगी ।’

श्रीमती विष्णु मिस मेहता की सहपाठिन थीं । मिस मेहता के कार्ड पर उन्होंने अपनी ओर से भी एक पंक्ति और जोड़ दी ।

हम लोग लगे गोष्ठी के प्रबन्ध में । नाथ का अनुरोध था, इंतजाम पुरतकल्लुफ़ हो और नाथ स्वयं सार्वजनिक पुस्तकालय में जा विश्वकोष में जावा-सुमात्रा के सम्बन्ध में गवेषणा करने लगा ।

निमन्त्रितों की संख्या परिमित थी । मिस मेहता समय से कुछ देर बाद एक मोटर पर उपस्थित हुईं । नाथ पहिले ही मालूम कर चुका था, मिस मेहता के यहाँ अपनी कार नहीं । अन्दाज़ा यह हुआ कि कार मँगनी की है । मिस मेहता के हाथ में अंग्रेज़ी का वह सचित्र साप्ताहिक था जो शायद ही कोई गम्भीर पाठक पढ़ता हो । इससे कुमारी जी की साहित्यिकता का भी अनुमान हो गया ।

कुमारी जी ने आधी अंग्रेज़ी और आधी पंजाबी में कहा—‘So sorry मैं लेट हो गई’—और उपस्थित लोगों को झुककर अभिवादन किया । श्रीमती विष्णु ने परिचय कराया—‘मिस उषा मेहता, जलविद !’ और फिर नाथ की ओर देखकर कहा—‘मि० प्रमोदनाथ शुक्ल, आप दक्षिण द्वीपों में छः मास भ्रमण करके आये हैं ।’

नाथ की प्रशान्त गम्भीरता और भद्रता की सीमा न थी । उसने विनय से मेज़ तक झुककर परिचय ग्रहण किया और जब तक मिस मेहता बतख की गर्दन की तरह लचक कर बैठ नहीं गईं, खड़ा ही रहा ।

चाय की पहिली प्याली समाप्त होते न होते गोष्ठी में प्रसंग चल पड़ा दक्षिण द्वीपों का । नाथ ने कहा—योरुप की अपेक्षा उसकी अनुरक्ति एशिया की संस्कृति से ही अधिक है इसलिये उसने योरुप न जाकर प्राचीन सभ्यता के इतिहास के ‘एलबम’ इन द्वीपों की ही यात्रा की ।

जो कुछ उसने इन महत्वपूर्ण द्वीपों में देख पाया वह संसार के किसी भी अन्य देश में अप्राप्य है। इन द्वीपों की सामाजिक समस्याओं की उसने विशेष जानकारी प्रकट की।

मिस मेहता ने अत्यन्त गम्भीरता से प्रश्न किया—Indian women (भारतीय स्त्रियों) की अपेक्षा आपने वहाँ की women (स्त्रियों) में क्या फरक देखा ?

उत्तर में निहायत वाकपटुता से नाथ ने योरप और अमेरिका की स्त्रियाँ का वर्णन शुरू किया। मज़ा यह कि किसी ने न पूछा, तुम योरप या अमेरिका कब गये और उसका प्रसंग से क्या सम्बन्ध ?

नाथ ने मौका देख मिस मेहता को कई दफ़े 'मिस ऊषा' और 'ऊषा जी' कह कर सम्बोधन किया और फ़िक्ररे के फ़िक्ररे अंग्रेज़ी में बोल कर यह प्रकट कर दिया कि इस यात्रा के बाद से अंग्रेज़ी में बोलना ही उसके लिये अधिक स्वाभाविक है। वह यदि पंजाबी बोलत है तो केवल दूसरों की सुविधा के लिये।

नाथ ने कहा—'जितना धन और श्रम देश में राजनैतिक आन्दोलन और दूसरी समस्याओं पर व्यय हो रहा है यदि उसका आधा भी स्त्रियों की उन्नति पर हो तो फल चौगुने से अधिक हो सकता है।' मिस मेहत सुनकर फड़क उठीं। नाथ ने कहा—'सुविधा होते ही वह इस विषय पर एक पुस्तक लिखने वाला है। लेकिन यह काम दरअसल स्वयं स्त्रियों के करने का है। पुरुष का अधिकार केवल सहायता करने का है।

नाथ की यह वक्तृता मिस ऊषा को देववाणी के समान जान पड़ी। नाथ ने कहा—'इस कार्य के लिये देशव्यापी आन्दोलन और संगठन की आवश्यकता है।' श्रीमती विष्णु को सम्बोधन कर, मिस मेहत के अभिप्राय से उसने कहा—'स्त्रियाँ केवल पुरुषों की सेवा का हँसाधन क्यों बनी रहें; उनका अपना स्वतन्त्र जीवन क्यों न हो ? इस आन्दोलन की धुरी लेकर आप लोगों को आगे बढ़ना चाहिये।'

नाथ के इस व्याख्यान से श्रीमती विष्णु भी बहुत प्रभावित हुईं । मिस मेहता ने कोमल स्वर में कहा—‘इस विषय पर मैं भी कुछ लिख रही हूँ, यदि, आपको समय हो तो कुछ मेरी सहायता कीजियेगा ।’

मैं नाथ के समीप ही था । खांसने के बहाने रूमाल मुँह के सामने कर मैंने धीरे से उसके कान में कहा—‘मान गये गुरु’ !

नाथ को उत्तर देने की फुर्सत नहीं थी । मिस मेहता के उत्तर में नाथ ने जो कुछ कहा उससे मालूम हुआ कि उसने अपना जीवन सामाजिक-क्रान्ति के अर्पण कर दिया है । इस प्रकार के किसी भी कार्य में सहयोग देने के लिये वह ‘सर्वतोभावेन’ तत्पर है ।

गोष्ठी समाप्त हुई । आमंत्रित लोग चलने को तैयार हुए । नाथ ने मिस मेहता की ओर अग्रसर होकर कहा—‘आपकी कार तो आई नहीं अभी तक ?’

मिस मेहता ने उपेक्षा से उत्तर दिया—‘ऐसी क्या ज़रूरत है, धूप तो चली ही गई, मुझे समीप ही एक ‘फ़्लेण्ड’ के यहाँ होते हुए जाना है ।’

नाथ जान चुका था, मिस मेहता पुरानी अनारकली में रहती हैं । अपनी सोने की रिस्टवाच की ओर देख कर बोला—‘समय तो अधिक है नहीं, मुझे दो-एक जगह जाना है, चौबुर्जी भी जाना है, एक टैक्सी मँगवालो !’

यह चपड़ासी का काम मेरे सिर पड़ा । उसे कोसते हुए समीप के मकान से फ़ोन कर एक टैक्सी मँगा हाज़िर करदी । मेरी अनुपस्थिति में ही उन दोनों के गाड़ी में एक साथ जाने की बात तय होगई ।

×

×

×

अगले दिन संध्या चार बजे मिस मेहता के यहाँ नाथ का निमंत्रण होगया । रात भर नाथ गूढ़ विचार में रहा । सुबह चाय पीने के बाद मुझे उसके साथ प्यारेलाल एण्ड संस मोटर बात्से के यहाँ जाना पड़ा । नाथ ने वहाँ पहुँच एक गाड़ी देखने की इच्छा प्रकट की ।

मैनेजर ने अत्यन्त अभ्यर्थना पूर्वक पूछा—‘किस मेकर की मोटर आप देखियेगा ?’

नाथ ने उपेक्षा से उत्तर दिया—‘घर से कसम खाकर नहीं चला हूँ, जो भी पसन्द आजाय ।’

मैनेजर ने गाहक के मज़ाक का स्वागत दाँत निकाल कर किया और एक ‘आस्टिन’ के पास लेजा हमें खड़ा कर दिया । नाथ ने ‘मौरिस’ और ‘डौज’ का ज़िक्र कर कहा—‘मैं सदा छः सिलिण्डर की गाड़ी पसन्द करता हूँ । ग़लती से एक चार सिलिण्डर खरीद ली है । उसने बहुत परेशान किया, आखिर निकाल देनी पड़ी ।’

कार के साथ ही साथ उसने दो-तीन किस्म की लारियों की भी क़ीमत दरयाफ्त की । आख़िर एक आस्टिन पर सौदा तै हुआ । पहिये बदलवाने की ज़रूरत थी, कुछ फालतू चीज़ें भी उसमें और ज़रूरी थीं ।

साढ़े पाँच हज़ार का बिल बना । मैं हैरान था—क्या नाथ आज फजीहत कराने पर तुला है ?

बिल हाथ में ले उसने कहा—‘गाड़ी फिट होजाने पर शौफर आकर टेस्ट करेगा और वही चेक देकर गाड़ी ले जायगा ।’ बिल उसने जेब में रख लिया ।

दुकान से अपने को सही सलामत निकल पाया देख, हाथ जोड़ उसे प्रणाम कर कहा—‘धन्य हो गुरु ।’

इसके पश्चात् नारायणदास एण्ड संस मोटर मर्चेण्ट की बारी आई । यहाँ एक ‘बूइक सैलून’ खरीदने का तय हुआ । साढ़े छः हजार का बिल जेब में डाल और शाम तक गाड़ी तैयार होजाने पर शौफर के चेक दे जाने और लेजाने की बात यहाँ भी तय हुई ।

यहाँ से हयात फर्नीचर वाले के यहाँ पहुँचे । एक ‘रोज़ बुड’ का ड्राइंग रूम सेट, एक ड्रेसिंग टेबल और गार्डन सेट पसन्द किया गया । साढ़े सत्रह-सौ का बिल जेब में रख हम लोग ‘कृष्णा कारपेट स्टोर’

में गये । यहाँ कुछ कालीन और दरियाँ पसन्द की गई । डेढ़ हज़ार का बिल जेब में रख शाम को मुंशी के आकर चेक दे सामान लेजाने का वायदा कर हम लोग बाहिर आये ।

घड़ी में साढ़े तीन बज गये थे । पैदल ही हम लोग म्युनिसिपल मार्केट की तरफ़ लौटे । चार बजने में ठीक छः मिनट रह जाने पर टैक्सी पर सवार हो, मुझे अकेला छोड़, नाथ मिस मेहता के यहाँ पहुँचा ।

×

×

×

गाड़ी की आवाज़ सुन मिस मेहता हाथ में 'ट्रिब्यून' लिये बरामदे में प्रकट हुई । नाथ ने मुस्करा कर कहा—'भय था, लेट होजाऊँगा परन्तु शोफर समय पर ले ही आया ।'

अपनी कलाई को ऊपर उठाते हुए मिस मेहता ने कहा—'आप तो बिलकुल ठीक समय पर ही आये हैं ।'

नाथ ने उत्तर दिया—'विदेश में समय का इतना खयाल रखना पड़ता है कि मुझे अब उसकी आदत हो गई है, जरा भी अव्यवस्था होने से बड़ी कलखसी होने लगती है ।'

समय के पश्चात् मौसिम का चर्चा चला । नाथ ने बताया लाहौर की अपेक्षा सहारनपुर का मौसिम कहीं अच्छा है ।

तब काम की बात शुरू हुई । नाथ ने जापान के स्त्री समाज से भारत के स्त्री समाज की तुलना कर कई तजवीज़ें सुधार की पेश कीं । हिन्दू समाज के पारिवारिक जीवन की आलोचना हुई । इस गम्भीर विवेचना को मिस मेहता ने जिज्ञासाभाव से सुना । बात-चीत का काँटा बदला, दूसरी लाइन आई :—

नाथ ने चाय की प्याली की ओर देखकर कहा—'यह देखिये, छोटी-छोटी बातों से जीवन का कितना घनिष्ठ संबंध रहता है । यह प्याली कितनी मामूली चीज़ है परन्तु इसका भी हम पर कितना प्रभाव पड़ता है । कितनी देर से मैं उसे देख रहा हूँ और इसे चुनने वाले

की कला की सूझ और परख की सराहना कर रहा हूँ। इससे चाय पीने में एक प्रकार का विशेष संतोष होता है। एक मेरा जीवन है, जिसमें सब काम मैशीन की तरह होता है, कला और सौन्दर्य का उसमें चर्चा नहीं। कोठी है शायद आवश्यकता से कुछ बड़ी परन्तु मेरे रहने लायक चार कमरे भी ढंग के नहीं। बैरे को मतलब है अपनी तनख्वाह से। बंगले के चारों ओर माली फूल न बोकर तरकारी बोता है, शायद इससे कुछ आमदनी उसे होजाती हो। इस दफ्ते यह निश्चय करके आया था कि घर को घर बनाऊँगा परन्तु सोचता यह हूँ कि अपनी परख से जो कुछ चुनकर लूँगा उसे स्वयम् भी पसन्द कर सकूँगा या नहीं। अपना हिसाब तो यह है, दुकानदार ने जो कुछ सब से अच्छा बता दिया, लेलिया। लेकिन दुकानदार को मतलब रहता है सबसे पहिले भद्दी चीज़ निकाल देने से।

‘आज कुछ फर्नीचर खरीदने गया था। शौक जरूर है, परख हो न हो। आपके यहाँ का ढंग और सिस्टम देखकर ईर्ष्या होती है। काश ! मेरी भी जगह ऐसी ही होती। इस कालीन को ही देखिये, क्या खूब टेस्ट है ? और फिर जिस वजह से बिछाया गया है………… !

‘मैंने भी एक कालीन खरीदा है, जब से बिल निकालते हुए—यह देखिये दूकानदार ने असली ईरानी बताया है, आगे उसका ईमान जाने।’ मिस मेहता ने बिल की ओर देखा, उनकी आँखें चढ़ गईं—फर्नीचर के बारे में भी मुझे दुकानदार की ही मान लेनी पड़ी। यह देखिये—ओफ़ ! वह शायद गाड़ी है, हाँ, यह देखिये,—अच्छा आप गाड़ी कौन-सी पसन्द करती हैं ?’

मिस मेहता की कनपटियों पर खून का बेग बढ़ गया। उसकी एक सहेली के यहाँ ‘ओवर लैण्ड’ गाड़ी थी और दूसरी के यहाँ ‘बूहक’। भेंपते हुए उसने कहा—‘ओवर लैण्ड भी कुछ बुरी नहीं, वैसे बूहक सस्ती रह सकती है।’

नाथ ने कहा—‘ठीक, परन्तु मेरी हालत देखिये ! पिताजी ने एक फ़ोर्ड ख़रीदी थी । उसी छक्के पर सन्तोष किये बैठा था । अब एक आस्टिन और एक बूइक सैलून ले चला हूँ । आस्टिन घूमने-फिरने के लिये और बूइक सैलून मेरठ, देहली और देहरादून आने-जाने के लिये । यह नहीं कि मैं निरा जड़ हूँ परन्तु केवल अपनी एक जान के लिये कुछ करते ग्लानि-सी होती है ।’

इस सरलता से मिस मेहता की समवेदना पिघल पड़ी । उन्होंने एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—‘अकेला जीवन वास्तव में नीरस होता है ।’

उन्होंने पुकारा—‘माया !’

नौकर हाज़िर हुआ । उन्होंने कहा—‘यह चाय ठण्डी हो गई नये सिरे से बना लाओ ।’

संकोच से नाथ ने कहा—‘यही देख लीजिये, यही मेरा हाल है । सभी काम इस ढङ्ग से होते हैं । यहाँ आपकी समवेदना ने मुझे बचा लिया । बर्ना दो ही रास्ते थे । या तो ठण्डी पी जाता या फिर बिना पिये ही रह जाता ।’

एक विचित्र अनुभूति से मिस मेहता के चेहरे की त्वचा भ्रमभ्रमा उठी और आँखें उन्मीलित प्राय हो गई ।

सोचा था—साढ़े पाँच तक नाथ लौट आयागा परन्तु जाकर कहीं लगभग दस बजे के आप आये । पूछा—‘गुरु इतनी देर कहाँ थे ?’

उत्तर मिला—मिस मेहता के साथ सिनेमा चला गया था ।

तीन दिन तक नाथ प्रायः शायब-सा रहा । चौथे रोज़ सहारनपुर जाने से पहले उसने अत्यन्त गम्भीरता से कहा—‘कम-से-कम जाकर मुझे कोठी का रङ्ग-रूप तो ठीक करना है । तुम कचहरी खुलते ही मेरी दर्खास्त सिविल मैरिज के लिये दे देना ।’

मैंने विस्मय से पूछा—‘क्या ?’ उसने गम्भीर भाव से कहा—‘मिस ऊषा से ।’

इस समाचार से पेट का पानी उबलने लगा। दौड़ा-दौड़ा श्रीमती विष्णु के यहाँ पहुँचा और खबर सुनाकर कहा—‘देख लिया भाभी?’

उन्होंने अपनी भूल स्वीकार न कर कहा—‘तो इसमें हर्ज ही क्या? दोनों मिलकर समाज सेवा करेंगे।’

×

×

×

दो वर्ष पश्चात् मंसूरी जाते समय मैं नाथ के यहाँ एक दिन के लिये ठहरा। उस समय भी पुरानी कोठी के अहाते में एक जर्जर फ़ोर्ड गाड़ी खड़ी थी और खाली ज़मीन में ‘पिटूनिया’ की जगह कुम्हड़ा और ‘हालीहॉक’ की जगह भिण्डी फूल रही थी। प्रायः डेढ़ बरस की एक लड़की फ़ाक पहिरे ठमकती-ठमकती भीतर के किसी कमरे से आई और बरामदे में बैठे स्पेनियल कुत्ते का आलिंगन कर उसका कान चबाने का यत्न करने लगी। इस अनाचार के विरोध में भीतर से स्त्री कंठ की आवाज़ आई ‘ना-मुन्नी छी’!

आवाज़ का अनुसरण करती हुई निकली महिला। रंग तो जरूर मिस मेहता का था परन्तु शरीर में लचकने की जगहें भर गई थीं। बिना फ़्रेम की चिमटीदार ऐनक गायब थी। सफ़ेद बारीक साड़ी पर दो एक हल्दी के दाग भी थे।

नमस्ते कर मैंने पूछा—‘भाभी कहिए—समाज सेवा का काम कैसे चल रहा है?’

भाभी उत्तर की तलाश में ही थीं, नाथ ने हाथ की सिगरेट का आखिरी कश खेंच कर कहा—समाज सेवा का नहीं समाज बढ़ाने का....

प्रेम का सार

उन् दिनों पेशावर से चरस की आमद गुप्त रूप से इतने भयंकर परिमाण में हो रही थी कि एक्साइज के साथ पुलिसवाले भी परेशान थे। न दिन को आराम न रात को चैन। गुप्त रूप से नशीली चीज़ों का व्यापार करनेवालों को पकड़ने में बुद्धि की मौलिकता के लिए जितनी गुँजाइश है उतनी दूसरे जुमों में नहीं। किस रूप में किस चीज़ के भीतर चरस नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

लाहौर के बड़े स्टेशन के सामने टहलता हुंआ मैं तेज़ नज़र से पेशावर-एक्सप्रेस के मुसाफिरों को ताड़ रहा था। लम्बी चादर में सिर से पैर तक लिपटी, सड़क को बीचों बीच से चीरती हुई, एक बुढ़िया कुछ दुविधा की सी अवस्था में मेरे सामने से निकली। उस औरत को देख मुझे कुछ सन्देह हुआ।

इतने दिन पुलिस में काम कर यही सीखा है कि जहाँ सन्देह करने के लिए कोई प्रत्यक्ष कारण न भी हो वहाँ भी सन्देह करना चाहिए। कितनी ही बुरकापोश, भले घर की स्त्रियों के असबाब में अनेकों बेर सेरों चरस निकल चुका है। किसी 'घाघ' ने इसी बुढ़िया के ज़रिये दो-चार सेर निकालने को सोची हो; क्या अचरज ?

‘ए माई ! ओ बुढ़िया ! इधर आओ !’—मैंने उसे पुकारा । एक हाथ से अपनी छोटी-सी गठरी को सीने पर दबाये, दूसरे हाथ से चादर सम्भालते हुए एक बेर मेरी ओर देख, मेरी पुकार को अनसुनी कर, वह अपनी राह चलती गई ।

सन्देह पुष्ट होने की वजह थी । जरा डांटकर मैंने कहा—‘इधर आओ !’ मानों उसने कुछ सुना-समझा नहीं । फिर एक दफ़े मेरी ओर देख वह चली जाने लगी । साथ के कांस्टेबल ने आगे बढ़ उसे रोक लिया ।

उसके हाथ की छोटी-सी पोटली की ओर संकेत कर मैंने पूछा—‘इसमें क्या है ?’ हाथ की उँगलियों को नचा, व्याकुलता भरे अस्पष्ट स्वर में उसने जो कुछ ‘अर्लम-प्लर्म’-कहा वह मेरी समझ में कुछ न आया । उसकी चालाकी भाँप कर मैंने अपने प्रश्न को पश्तो में दुहराया । व्याकुलता से गिड़गिड़ाकर उसने जो उत्तर दिया, मैं कुछ समझ न सका ।

परेशान था, यह औरत पागल बन रही है या दरअसल पश्तो और पंजाबी न समझ कोई तीसरी ही बोली बोलती-समझती है, साथ के सिपाही ने उसे जबरदस्ती समझा देने के अभिप्राय से, खूब ऊँचे स्वर में डाँटकर पूछा—‘इसमें क्या है ?’ पर फल कुछ न हुआ ।

आखिर, यह औरत इतनी ही बे-बूझ है तो अकेली लाहौर जैसी जगह में पेशावर-एक्सप्रेस से, और फिर रात के वक्त, आई कैसे ? यहाँ इसका क्या काम है ? मैं इसी उधेड़बुन में फँसा था । उस समय कासिम—साथ के सिपाही ने दोनों हाथों से इशारा कर कहा—‘हती कश्मीर-हती’ ?

औरत ने एक लम्बा साँस लेकर हामीं भरी । यह तो समझा कि यह औरत काश्मीरन है परन्तु इससे भी तो इसकी गठरी में चरस हो सकता है या इसके पीछे कोई दूसरा रहस्य है । इस बात का ही क्या प्रमाण कि यह दिन-रात लाहौर आने-जाने वाले बुर्दाफ़रोश काश्मीरियों

के गिरोह में से नहीं है ? जिस तरह वह अपनी गठरी को हाथ न लगाने दे रही थी, शक के अलावा कोई राह ही नहीं थी । कासिम ने काश्मीरियों के लिंग भेद अज्ञान की नकल करते हुए पूछा—‘कित्थे जान्दा ?’ (कहाँ जा रही हो ?) फिर जवाब नदारद ।

कासिम ने कहा—‘हुज़ूर, यह औरत बदमाश है, मक्कर साध रही है ।’

कुछ सोचकर मैंने हुकुम दिया—‘एक टाँगे पर इसे बड़ी कोतवाली ले चलो ।’ बड़ी हायतोबा के बाद वह टाँगे पर बैठी ।

पीरहुसैन कान्सटेबल काश्मीरी है । सैयद होने के नाते उसके आध्यात्मिक प्रभाव का भी अन्त नहीं । उसे बुला मैंने उस औरत से बात करने को कहा । पीर हुसैन ने समीप पहुँच, आश्वासन देने की मुद्रा में औरत को सम्बोधन कर अपनी अगम भाषा में दो वाक्य कहे और औरत का भय काफ़ूर हो गया । वह उसके समीप सिमट आई और आँखों पर अपनी मैली चादर की खूँट रख, सिसकती हुई बहुत-कुछ बक गई ।

पीरहुसैन ने बताया कि वह अपने मर्द का पता पूछ रही है । उसी को ढूँढ़ने लाहौर आई है । कई बरस हुए वह कमाई करने लाहौर आया था पर लौटा नहीं । कई दफ़े चिट्ठी लिखने पर भी वह नहीं लौटा । उसी को लिवा लेजाने के लिये यह आई है और लेकर ही जायगी ।

मैंने कहा—‘इसका मर्द तो देखा जायगा । पहिले इसकी गठरी खुलवाओ ।’ पीर हुसैन के कहने से उसने कुछ संकोच से गठरी खोल दी । चिथड़े लगी चादर के एक टुकड़े में दो-एक और मैले कपड़ों के टुकड़ों में कई दिन की बासी मकई की रोटी का चूरा था । काश्मीरी ढंग की एक पुरानी मर्दानी वास्कट भी थी, जिसमें जगह-जगह बेहूदा ढंग से फूल-भ्यत्ती की, काश्मीरी कला का अपमान करनेवाली, सोज़नकारी बनी थी, काँच के गोल-गोल टुकड़े उसमें जड़े थे । इस वास्कट की

तहें उसने बड़ी अनिच्छा से खोलीं, मानो वह उसे किसी को दिखाना नहीं चाहती, इसके अलावा एक छुरा भी था। जो उसने पीर हुसैन के बहुत आश्वासन दिलाने पर अपने कपड़ों के भीतर से निकाल कर बाहर किया। छुरा वह क्यों रखे है; बहुत पूछने पर भी इस बात का उसने कोई जवाब न दिया। मुँह मोड़ कह दिया—‘ऐसे ही।’

एक काश्मीरन, जिसने कभी अपने गाँव से बाहिर पैर नहीं रखा, अकेली लाहौर आती है। वह कहती है, अपने आदमी को ढूँढ़ने आई है परन्तु किसी भी आदमी या स्थान का पता वह नहीं जानती। एक मर्दानी वास्कट उसके पास है। जिसे वह छिपाना चाहती है और है उसके पास एक छुरा। मामले के पेचीदा होने में सन्देह ही क्या था ?

पीरहुसैन से मैंने कहा—‘यह औरत चालाक मालूम पड़ती है और आश्चर्य नहीं, यदि यह किसी भयानक मामले में फ़रार हो। इसका भेद लो !’

औरत को पीरहुसैन के सुपुर्द कर मैं दूसरे कागज़ देखने में लगा। बीच-बीच में उसकी तरफ़ ताककर देख लेता। पीरहुसैन के बहुत देर तक समझाने के बाद इस स्त्री ने आँसू पोंछते हुये धीरे-धीरे अपनी बात कहनी शुरू की। कुछ देर बाद वह खूब हुचक-हुचककर रोने लगी। पीरहुसैन उसे ढाँढस बँधा रहा था, ऐसी अवस्था में बीच में बाधा डालना मैंने उचित न समझा। पीरहुसैन ने आकर मामला समझाया :—

श्रीनगर से तीस-पैंतीस मील परे, बैरीमाग के आस-पास, इस औरत का घर है। वहाँ से सवा-दो-सौ मील पैदल चल वह ‘जम्भू’ पहुँची और स्टेशन-स्टेशन भटकती वह आखिर अपने पति की तलाश में पेशावर-एक्सप्रेस से लाहौर आ पहुँची है। पति का पता पूछने पर कहती है, वह लाहौर में है लेकिन ठिकाना नहीं जानती।’

‘पता नहीं जानती तो क्या मर्द को अपने सिर में ढूँढ़ेंगी ?’—मैंने

कहा 'या तो वह अपने पति का पता जानती है या उसे ढूँढ़ने नहीं आई।' पीरहुसैन की मार्फत अपनी सहानुभूति का निश्चय दिला डेढ़ घण्टे तक उससे पूछ-ताछ करने के बाद जो मैं समझ पाया उसका सार यह है'—

'तीस बरस हो गये मेरा पति 'फज्जा' गाँव के दूसरे जवान मर्दों के साथ मज़दूरी कर रुपया कमाने लाहौर आया था। उसी समय मैंने कहा था—हमारे यहाँ जो कुछ है, पीर फ़कीर का दिया बहुत है। आठ-दस भैंस हैं, दस-बारह 'धुमा' ज़मीन है, सेव, अखरोट और शहतूत के पेड़ हैं; मेहनत करने से इसी में सब कुछ हो सकता है। मेरी सास—उसकी माँ—ने भी समझाया। मैं उस समय छोटी थी। मेरी उमर बीस साल से भी कम थी। उसने डाँट-डपटकर चुप करा दिया और कहा—सात महीने में सेवों में फिर फूल आते-आते वह लौट आयेगा। लाहौर में चाँदी पैरों तले रलती है। सब लोग जाते हैं, मैं क्यों नहीं जाऊँगा? मैं रोती रही, वह चला गया। सास और मैं सब काम करती थीं, खेत में हल भी हमें चलाना पड़ता था। सास नाराज़ होती, कहती—नकारे लड़के से लड़का न होना अच्छा।

'बरस गया, दो गये, तीन गये, मैं रोज़ रोती थी। बर्फ़ गलने पर परदेस गये लोग घर लौटते, मेरा मर्द न लौटता। दो बरस और गुजर गये। 'हाबला' का मालिक 'रहमान' लाहौर से लौटा। वह फज्जा की एक चिट्ठी लाया। लिखा था—

'मुझे पुलिस ने झूठ-मूठ पकड़ लिया है। थोड़ा रुपया भेज दो तो मैं लौट आऊँ। सास और मैं बहुत रोई। दो भैंस बेचकर हमने चालीस रुपये भेज दिये। सास से छिपा डाकखाने के मुंशी से मैंने एक चिट्ठी लिखा दी कि जल्दी आजा, माँ तेरी सख्त नाराज़ है और सख्त बीमार है। मैं रोती रहती हूँ। मुझे बहुत डर लगता है, तू जल्दी आजा। मुझे सास गाली देती है कि मैंने तुझे भेज दिया कि तू मुझसे लड़कर

चला गया और अब अकेले काम नहीं होता । तेरी माँ थक गई है और तेरे बिना बड़ी तकलीफ़ है ।’

मैंने पूछा—‘रुपये की रसीद और चिट्ठी का जवाब आया ?’

‘उसने बताया—‘रुपये की रसीद आई थी, चिट्ठी का जवाब नहीं आया ।’

मेरा विश्वास कर उसने उस मर्दानी वास्कट की जेब से तीन रसीदें निकालीं । तारीख के हिसाब से इनमें पहली पर सन १९०६ अक्टूबर, भाटी दरवाजा लाहौर के डाकखाने की मोहर थी । यह चालीस रुपये का मनीआर्डर था । पीछे एक अँगूठे का निशान था और उसकी बगल उर्दू में लिखा था—‘फज्जा’ । गवाह के भी हस्ताक्षर थे । रसीदें दे उसने फिर क्रिस्ता शुरू किया ।

‘साल पर साल गुजरने लगे, फज्जा नहीं लौटा । जो लोग लाहौर’ अमृतसर कमाई करने जाते उनसे कभी-कभी फज्जा की खबर मिलती । कभी सुनती पुलिस ने पकड़ लिया है ? कभी सुनती, नौकर हो गया है, कभी सुनती, दुकान कर अमीर हो गया है । सास बीमार होकर मर गई । मैं अकेली रह गई ।

‘फारू’ का ब्याह मुझसे पीछे हुआ था । उसके दो पठोरे जैसे बेटे हो गये और लड़की घर का काम काज करने को हो गई । ‘हावला’ के दोनों लड़कियों के बच्चे हो गये । ‘मामचू’ की घरवाली मर गई पर उसके भी एक तगड़ा लड़का और एक लड़की हो गई ।

‘नौ बरस बाद लाहौर से एक आदमी खत लाया, लिखा था—मैं बीमार हो गया हूँ खर्च पास नहीं, बड़ी तकलीफ़ है । खर्च किसी तरह भेज दो मैं आजाऊँगा । मैंने फिर एक भैंस बेची, दो अखरोट के पेड़ ‘पागसू’ को आधे दामों दिये और उसे फिर चालीस रुपये डाक के मुंशी से भिजवाये और खत भी लिखवा दिया कि अब मैं अकेली रह गई हूँ । तेरी माँ भी मर गई है । सारा गाँव मेरा दुश्मन हो रहा है । जिसके

मर्द नहीं उसका क्या ठाँव ? कोई खेत काट ले जाता है, कोई अखरोट भाड़ ले जाता है । 'हावला' ने शहतूतों पर से सब कीड़े चुरा लिए हैं और देखो, सबके दो-दो तीन-तीन बच्चे हैं, घर आते-जाते हैं, काम करते हैं, मेरा कोई नहीं । अब मुझे डर लगता है । मैं मान्दी हो जाऊँगी । मुझे तेरी कमाई नहीं चाहिए । तू बस, आजा, हरगिज आजा ।

अब के चिन्ही आई कि तू घबरा मत मैं जरूर आऊँगा और लाहौर में बणज करूँगा । तुझे भी लाहौर ले आऊँगा, यहाँ बड़ा आराम है । तू फिकर मत करना, तुझे गहने भी बनवा दूँगा । मैंने फिर भी लिखवाया कि तू आजा, घर में बसना ठीक है । पराई जगह के पैर नहीं होते । बहुत नुकसान खेती और जानवरों का हो गया पर तू आयेगा तो सब हो जायेगा । मैं अभी जवान हूँ, अभी हाथ-पैर चलते हैं, तेरे लड़के होंगे तो सब होगा । कोई नहीं आया, फिर खत भी नहीं आया ।

'मैं कई दफ़े माँदी पड़ गई । घर में कोई नहीं था तब मामचू पानी भर कर दे जाता और भैंसों का दूध निकालकर ले जाता । छः बरस और निकल गये तो मामचू ने कहा—'तू बूढ़ी हो गई, जवानी में हाथ पैर चलते थे, काम काज कर लेती थी । अब पाँच सात बरस की और बात है फिर तो हाड़ बैठ जायँगे ; क्या करेगी ? मेरे साथ निकाह कर ले । मेरा लड़का है, दोनों को कमाकर खिलायेगा । तेरे भी बाल-बच्चा हो जायगा तो अच्छा है । नहीं तो क्या करेगी ?' मैं रोने लगी ।'—वह इस समय भी रो रही थी ।

मैंने कहा—'नहीं फजा मेरा मर्द है वह आयगा तभी मेरा घर बसेगा अब वह आ जायगा ।'

'तीन बरस बाद फिर फजे का खत आया कि किसी महाजन का देना नहीं दिया, कैद होगया है । तीस रुपये भेजदो तुरन्त आजायगा । अबकी मैंने एक घुमा जमीन पर करज ले डाकखाने से रुपया भिजवाया और लिखाया कि तेरा घर है, तेरे बिना बरबाद हो रहा है और कि

तमाम उमर परदेस में बिताई अब तो आकर घर करो कि और सब लोगों के जवान लड़के घर कमा रहे हैं और मैं बूढ़ी मर रही हूँ ।

‘कोई नहीं आया । खत भी नहीं आया । सुना कि उसने और ब्याह कर लिया है । मैंने उसे खत लिखाया—तूने बुरा किया खैर तूने अच्छा किया । तू आज्ञा और उसको भी ले आ । मैं दोनों की खिदमत करूँगी । रोटी का टुकड़ा दो वक्त मुझे देना । तू हरगिज आज्ञा ।

‘कोई नहीं आया । मैं थक गई । काम चौपायों और खेती का अब नहीं होता । मेरा क्या है, मैं खतम होगई । जिसके लिए इतना सहा उसे लेने आई हूँ । उसे ढूँढ़कर पूछूँगी बता तू घर क्यों नहीं आया ? घर को बरबाद किया, अब तू चल और कुछ नहीं, हमारे बाल बच्चे न सही, हम चार-दिन साथ रहेंगे । जो पहले पूरा होगा दूसरा उसको मिट्टी देगा ।’

वह फफक फफककर रोने लगी । मैं उसके जीवन के प्रति भाग्य के विद्रूप की बात सोचता रहा था । उससे पूछा—‘क्या यह वास्कट फज्जा की है ?’ उसने सिर हिला कर हामी भरी । इतनी प्रतारणा के बाद भी वह उस वास्कट को साथ ही लिये थी । शायद उमंग से अपने दूल्हे को सजा कर साथ ले जाना चाहती थी ।

मैंने पूछा—‘यह लुरा किसका है ?’

आँखें पोंछ कर उसने कहा—‘मेरा ।’

मेरे पूछने पर कि लुरे का वह क्या करेगी ? वह चुप होगई ।

कुछ देर ठहर कर पीरहुसैन ने सान्त्वना के स्वर में प्रश्न को दोहराया ।

उसने बिगड़ कर जवाब दिया—‘उसने मेरी तमाम उमर बरबाद करदी, मैंने उसके लिए सब कुछ किया, उसके लिए मैं बाँझ बनी । अब वह मेरे साथ नहीं जायगा तो मैं उसे कतल कर दूँगी ।’

सुनकर मैं काँप गया परन्तु क्रोध या घृणा उसके प्रति न कर सका । पुलिस स्टेशन में बैठकर जो व्यक्ति खून करने का इरादा प्रकट करे.... पीरहुसैन ने उसका वह छुरा उठा सन्दूक में बन्द कर दिया ।

×

×

×

फज्जा की तलाश शुरू हुई । शहर के दस नम्बरिया बदमाशों का रजिस्टर देखा गया । उसमें अनेक 'फज्जा' अनेक रूप में मौजूद थे । फज्जा, फैजू, फज़लू, फज़ले खाँ । इनमें रफ़िया का फज्जा कौन है ? यह जानने के लिए उससे उसके मर्द का हुलिया पूछा । उसने बताया— 'देखने में बड़ा अच्छा है, जवान है, भली-भली दाढ़ी-मूँछ है, एक चोट का निशान दायें नथने पर है ।'

दायें नथने पर चोट का दाग....रजिस्टर से मालूम हुआ, वह हीरा मण्डीवाला फज्जा है । खोज करने पर मालूम हुआ, वह जमानत न दे सकने के कारण दफ्ता १०६ में लाहौर सेन्ट्रल जेल में सज़ा काट रहा है । यह बात रफ़िया से कहने की नहीं थी ।

शाह साहिब से मिल, सिफ़ारिश करा, मियाँ याक़ूब हुसैन से फज्जा का मुचलका दाखिल करवा दिया । फज्जा को अलग बुला डांट फटकार घर जाकर आराम से रहने के लिये तैयार कर लिया ।

जब उसे लाकर रफ़िया के सामने खड़ा किया, वे दोनों एक दूसरे को पहचान न सके ।

सम्भवतः रफ़िया तेइस चौबीस बरस के हट्टे-कट्टे जवान फज्जा की बात सोच रही थी । पीरहुसैन ने जब दोनों का परिचय कराया तो कितनी ही देर तक रफ़िया बज्राहत की भाँति दाँतों तले उँगली दबाए फज्जा की तरफ देखती रही, मुख से उसके शब्द न निकल सका ।

फज्जा के सफेद बाल, भुर्रियों से भरे चेहरे, निस्तेज आँखें और दाँत हीन मुख को देख वह स्वीकार न कर सकी कि वही उसका फज्जा है, जिसके लिये उसने आयु भर तपस्या की है ।

एक बहुत गहरी साँस ले, मुख से एक भी शब्द न बोल सिर हिला कर वह एक ओर को हट गई और चादर में मुख छिपा न जाने वह कितनी देर तक रोती रही ।

किसी को उससे कुछ कहने का साहस न हुआ । साँझ को पीर हुसैन ने उसे समझाया कि फजा को लेकर घर चली जा ।

उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं, फुंकार कर उसने कहा—‘इस धोखाबाज, दगाबाज, जालिम ने मुझे मिट्टी कर दिया । मैं उसका मुँह नहीं देखूँगी ।’

वह उस वास्कट को वहीं छोड़, अपनी चादर उठा, स्टेशन की ओर चल दी । उस समय कुछ कहने का अवसर न था, परन्तु खयाल आया—‘यह है तीस बरस की प्रेम साधना का सार ।’

पहाड़ की स्मृति

अब तो मण्डी में रेल, बिजली और मोटर सभी कुछ हो गया है, पर एक ज़माना था, जब यह सब कुछ न था। हमीरपुर से रुवालसर के रास्ते लोग मण्डी जाया करते थे। उस समय व्यापार या तो खच्चरों द्वारा होता था, या फिर आदमी की पीठ पर चलता था। उन दिनों मैं मण्डी की राह कुल्लू गया था।

मण्डी 'नगर' से कुछ इधर ही एक अर्धेड़ उमर की पहाड़िन को, बाँस की टोकरी में खुरबानियाँ लिए सड़क किनारे बैठे देखा। पहाड़ी लोग अक्सर इस तरह कुछ फल-फल ले सड़क के किनारे बैठ जाते हैं और राह चलतों के हाथ पैसे-पैसे दो-दो पैसे का सौदा बेचते रहते हैं। खुरबानियाँ बहुत बड़ी-बड़ी और बढ़िया थीं।

मेरे समीप पहुँचते ही उस पहाड़िन ने बिगड़ी हुई पंजाबी में सवाल किया—'क्या तुम लाहौर के रहनेवाले हो?'

मेरी पोशाक देखकर ही शायद उसे यह खयाल गुजरा होगा कि मैं लाहौर का रहनेवाला हो सकता हूँ।

सोचा—क्या यह मुझे पहचानती है? लेकिन कैसे? उत्तर दिया—'हाँ, मैं लाहौर का रहनेवाला हूँ।'

उसकी आँखें क्रुद्रे खुशी से चमक उठीं, उसने पूछा—‘तुम परसराम को जानते हो ?’

विस्मय से मैंने पूछा—‘परसराम ? कौन परसराम ?’

कुछ व्यग्र होकर उसने उत्तर दिया—‘परसराम ठेकेदार !’

कुछ मतलब न समझ फिर पूछा—‘कौन परसराम ठेकेदार ?’

मैं जिस ओर से चलकर आ रहा था, उसी ओर हाथ से संकेतकर उसने कहा—‘वह दोनों पुल जिसने बनवाए थे ।’

बात मेरी समझ में न आई । मैंने उत्तर दिया—‘मैं परसराम को नहीं जानता । होगा कोई, क्यों ?’

उदास हो उसने कहा—‘तुम लाहौर के रहनेवाले हो, और उसे नहीं पहचानते ! वह भी तो लाहौर का रहनेवाला है ।.....परसराम ठेकेदार है न ?’

पहाड़िन की अधीरता से कुछ द्रवित हो मैंने पूछा—‘किस गली, किस मुहल्ले का रहनेवाला है वह ?’

बहुत चिन्तित भाव से एक हाथ गाल पर रखकर उसने धीरे-धीरे कहा—‘गली-मुहल्ला ?.....गली, मुहल्ला नहीं, वह लाहौर का रहनेवाला है । तुम भी तो लाहौर के रहनेवाले हो, उसे नहीं पहचानते ?’

उस औरत की नादानी पर मैं हँस न सका । उसे समझाने की कोशिश की कि लाहौर बहुत बड़ा शहर है । अधिक नहीं तो दो-ढाई लाख आदमी लाहौर में बसते होंगे । वहाँ एक-एक मुहल्ले में इतने आदमी हैं कि एक दूसरे को नहीं पहचान सकते । मैं हीरा मण्डी में रहता हूँ । यदि परसराम ठेकेदार मजंग में रहता हो, तो वह मुझ से साढ़े तीन मील दूर रहता है, हालाँकि वह भी लाहौर में रहता है और मैं भी लाहौर में ही रहता हूँ और हम लोगों के बीच दूसरे लाखों आदमी रहते हैं ।’

बात औरत की समझ में नहीं आई । उसकी आँखों की प्रसन्नता

काफ़ूर हो गई। गाल पर हाथ रखकर धीमी आवाज में उसने कहा—
‘वह लाहौर का रहनेवाला है, लम्बा-लम्बा, गोरा-गोरा, प्यारी-प्यारी
आँखें हैं, तुम से कुछ जवान है, भूरा-भूरा कोट पहनता है, रेशमी
साफा बाँधता है, वह लाहौर का रहनेवाला है।’

मैंने दुखित हो उत्तर दिया—‘नहीं, मैं नहीं पहचानता।’

उसकी टोकरी के पास उँकड़ू बैठ खुरबानियाँ चुन-चुनकर मैं अपने
रूमाल में रखने लगा। सहानुभूति के तौर पर मैंने पूछा—‘क्यों, तुम्हें
उससे कुछ काम है क्या?’

गहरी साँस खींचकर उसने कहा—‘परसराम यहाँ पुल बनवाता
था। पाँच बरस हो गये, तब वह यहाँ था। वह जाने लगा तो मैंने
कहा—मत जा। उसने कहा, मैं बहुत जल्दी, थोड़े ही दिन में लौट
आऊँगा। वह आया ही नहीं……लाहौर तो बहुत दूर है न?’

मैंने उत्तर दिया—‘हाँ, बहुत दूर है।’

उसकी आँखों में नमी आ गई। उसने गर्दन झुकाकर कहा—
‘न जाने वह क्यों नहीं आया……न-जाने कब आएगा……पाँच
बरस हो गए, आया नहीं!’—वह चुप हो गई।

कुछ देर बाद गर्दन झुकाए ही वह बोली—‘उसकी राह देखती
रहती हूँ, इसीलिए यहाँ सड़क पर भी आ बैठती हूँ। मेरा बहुत-सा
काम हर्ज होता है; लेकिन दिल घबराता है, तो यहाँ आ बैठती हूँ।
दो और आदमी लाहौर से आए थे पर वह नहीं आया पाँच बरस हो
गए!’ वह चुप हो गई।

एक छोटी-सी लड़की, प्रायः पाँच बरस की,……एक ओर से
दौड़ती हुई आई। मुझ अपरिचित को देख वह सहम गई। फिर मुझे
अलक्ष्य कर, माँ के आँचल में मुँह छिपा वह उसके गले से लिपट गई।

मैंने पूछा—‘यह तुम्हारी लड़की है?’

सिर झुकाकर उसने हामी भरी। लड़की के सिर पर हाथ फेरते

हुए उसने कहा—‘यह भी पाँच बरस की हो गई । इसने बाप को अभी तक नहीं देखा । देखे तो पहचान भी न पाये ।’

उन दोनों की ओर देखते हुए मन में विचार आया—कवि लोग कहते हैं, ‘विरह प्रेम का जीवन है और मिलन अन्त,’ क्या यह अपने प्रेम का अन्त कर देना चाहती है ? यों यह प्रेम क्या सदा बना रहेगा ? फिर खयाल आया—यह स्त्री निर्लज है ! क्या इसका प्रेम त्याग या तपस्या का उदाहरण है ?

पूछा—‘कितने पैसे ?’

बोली—‘नहीं, नहीं, पैसे क्या ; तुम लाहौर के रहनेवाले हो, तुमसे पैसे क्या ?’ और दोनों हाथों की अंजली से जितनी खुरबानियाँ रूमाल में आ सकती थीं, उसने भर दीं ।

समझ गया औरत पैसे न लेगी । उसकी वह उदास सूरत मन में चुभ-सी रही थी; उठकर जाते भी क्रूरता अनुभव होती थी । असबाब का खचर दूर निकल गया होगा, इस खयाल से उठना ही पड़ा । एक अठन्नी निकाल आत्मीयता के भाव से बच्चे के हाथ में देनी चाही । औरत ने इनकार किया परन्तु मेरा भाव समझ, उसने बेटी को अनुमति दे दी ।

उन्हें छोड़ मैं बस्ती की एक धर्मशाला में जा टिका । कल्पना में वही सड़क के किनारे प्रतीक्षा में बैठी पहाड़िन दिखाई देती रही । मानों वहीं प्रतीक्षा में बैठ-बैठकर वह अपनी शेष आयु व्यतीत कर देगी ।

सुबह धूप निकलने पर घूमने निकला । पैर स्वयं उसी सड़क की ओर चल दिये । चट्टानों की आड़ में मोड़ घूमकर देखा—वह औरत अपने खेतों में निराई कर रही है । आने-जानेवाले की आइट पा एक नज़र सड़क पर डाल लेती है मालूम पड़ता था, उसके व्यथा और श्रम से क्लान्त शरीर को आशा की एक मन्द लौ ने जीवित रखा है । यह मन्द लौ परसराम के लौट आने की आशा है ।

मुझे देख उसके चेहरे पर एक फीकी-सी मुस्कराहट फिर आई ।

हाथ की कुदाली एक तरफ़ डालकर वह बोली—‘क्या लाहौर लौट रहे हो ?’

उत्तर दिया—‘नहीं ज़रा ऐसे ही घूमने चला आया ।’

मैं उसके खेत में चला गया । पूछा—‘परसराम यहाँ कितने दिन रहा था ?’

पहाड़िन ने जवाब दिया—‘आठ महीने । कहता था—जल्दी ही लौट आऊँगा, अभी तक नहीं आया ? जाने कब आयेगा ? लड़की भी इतनी बड़ी हो गई !’

मैंने पूछा—‘तो तुम उसके साथ लाहौर क्यों नहीं चली गई ?’

उसने गाल पर हाथ रखते हुए कहा—‘हाँ मैं नहीं गई । परसराम ने तो कहा था, तू चल । पर मैं नहीं गई । देखो मैं कैसे जाती ? यहाँ का सब कैसे छोड़ जाती ? वह सामने खुरबानियों के पेड़ हैं, वे नास-पातियाँ हैं, सेब हैं, दो अखरोट हैं । मैं यहाँ से कभी कहीं नहीं गई । एक दफ़े ज़ब मैं छोटी थी, मेरी मौसी मुझे अपने गाँव, वहाँ नीचे, ले गई थी । उसका घर बहुत दूर है । दस कोस होगा । वहाँ बहुत वैसा-वैसा है, न यह पहाड़, न यह व्यास नदी की आवाज़, न ऐसे पेड़, रूखा-रूखा मालूम होता है । वहाँ मुझे बुखार आ गया था, तब मेरा फूफ़ा मुझे पीठ पर लाद कर यहाँ लाया । आते ही मैं चंगी हो गई । मैं कभी कहीं नहीं गई । लाहौर तो बहुत दूर है, वहाँ शायद लोग बीमार हो जाते हैं । परसराम के लिए मुझे बहुत डर लगता है । क्या जाने, क्या हाल हो ? हमारे यहाँ बीमार कभी ही कोई होता है । हो भी जाय तो हर्दू जुलाहा भाड़-फूँक देता है । लाहौर में क्या कोई अच्छा भाड़ने-वाला है ?’

मैंने उत्तर दिया—‘हाँ, है क्यों नहीं, बहुत से हैं ।’

सन्तोष से सिर हिलाकर उसने कहा—‘अच्छा ।’

सकुचाते-सकुचाते मैंने पूछा—‘परसराम के आने से पहले तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ था ?’

‘उसने कहा—‘ब्याह तो हुआ था, बहुत पहले। मुझे ब्याह के यहाँ से मेरा आदमी तक मुझे ले गया था। वहाँ मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं बीमार हो गई। वहाँ मेरी सौत मुझे मारती थी। मैं यहीं लौट आई। मेरा आदमी कभी-कभी यहाँ आकर रहता था। ब्याह के तीन साल बाद वह गुज़र गया। मैं माँ के पास ही रही। मैंने परसराम से कहा था—यहाँ सब कुछ है, तू कहीं मत जा। कहता था—मैं जल्दी आ जाऊँगा। पाँच बरस हो गए, वह अभी तक नहीं आया। देखो कब आये ? अब तो दो बरस से माँ भी नहीं है।’

चौथे दिन तीसरे पहर मैं फिर उधर से गुज़रा। वह सिर झुकाए अपने खेत में काम कर रही थी। कुछ गुनगुनाती जाती थी। मैं क्षणभर खड़ा देखता रहा। शायद वह विरह का गीत गुनगुना रही थी या पिछले दिनों की याद कर रही थी। उसके ध्यान में विघ्न डालना उचित न समझा, लौट आया।

मण्डी में मैं सप्ताह भर ठहरा। कुल्लू के लिए चलने से पहले मैं उसे फिर एक दफ़े देखने के लिए गया। वह अपने खेत में अनमनी-सी निराई कर रही थी। उसकी लड़की खेत से निकाले हुए घास को दौड़ दौड़कर बाहर फेंक आती थी।

मैंने कहा—‘आज जा रहा हूँ।’

उसने उत्सुकता से पूछा—‘लाहौर ?’

मैंने कहा—‘हाँ, कुल्लू जा रहा हूँ, वहाँ से लाहौर लौट जाऊँगा।’

बड़ी आज़िज़ी से उसने कहा—‘परसराम से मेरा सन्देशा ज़रूर कहना। कहना—दिनभर सड़क ताका करती हूँ; मैं बड़ी इन्तज़ार में, पाँच बरस हो गए, अब ज़रूर लौट आ। तेरी लड़की तुझे पुकारती रहती है। कहोगे न ?’

मैंने कहा—‘ज़रूर कहूँगा ।’

अपनी बेटी को प्यारकर वह बोली—‘देख, बाबू तेरे बाप के पास जा रहे हैं । बाबू को सलाम कर । बाबू तेरे बाप को भेज देंगे ।’

‘अच्छा’—कहकर मैं लौट पड़ा और फिर उधर न देख सका । ऐसा जान पड़ता था, मेरी गर्दन की पीठ पर उसकी आँखें गड़ी जा रही हैं । मनमें एक बेचैनी-सी अनुभव हो रही थी । कह नहीं सकता—परसराम के प्रति क्रोध था.....पहाड़िन के प्रति करुणा थी या परसराम से ईर्ष्या.....?

पीर का मज़ार !

भारत के नकशे पर पंजाब के उत्तर-पश्चिम में, जहाँ लाल रंग समाप्त हो बेरंग प्रदेश आरम्भ हो जाते हैं, वहीं मसूदों के इलाके में भूरे, सूखे, नंगे, उत्तुंग, बीहड़ पर्वतों में खेनाज़ैल ग्राम जहानगुल का घर था। जहानगुल आज संसार में नहीं है परन्तु उसकी यशः कीर्ति की शुभ्र ध्वजा उन भयङ्कर पर्वत चट्टानों में। अब भी स्थायी रूप से खड़ी है और खड़ी रहेगी जब तक खेनाज़ैल के इलाके में दीन पाक का कदम कायम रहेगा !

जहानगुल कौन था ? क्योंकि वह अपने यश की धवल-ध्वजा अमर कर गया, यही कहने जा रहे हैं। जहान मसूद पठान था और वही करता था जो मसूद पठान करते हैं। कहने को पाँच बीघे ज़मीन की खेती और दस-बीस भोड़ों का एक गोल, लेकिन दर असल वही वंश क्रमागत पेशा, मुसाफिरों को लूटना और वंश-शत्रु से बदला लेना।

वह बचपन से ही होनहार था। बाप छोटी उमर में अनाथ कर गया पर इससे क्या ? बाप का साया सिर से क्या हटा, मानो उसकी जवां-मर्दी बेटे के सीने में समा गई। छोटी उमर से ही बाप की तोड़ेदार बंदूक ले वह लूट की टोली में शामिल होने लगा।

पिता जिस ऊँट को लेकर बन्नू से गज़नी तक भाड़े पर माल ढोता था, उसे बेचकर जब जहान ने 'मार्टिनी-हेनरी' राइफल खरीद ली तो गाँवभर समझ गया, दीनगुल का बेटा बाप का नाम रोशन करेगा। मार्टिनी-हेनरी का स्वामी और अचूक लक्ष्य बेधी बन वह खेनाज़ैल की लूट की टोली का मनोनीत नेता बन गया।

जहानगुल की यह सफलता और सम्मान देख उसकी माँ की छाती फूल उठती। वह पाँच वक्त नमाज़ पढ़ती थी, अब तहज़ुद की नमाज़ और क़ायदे से पढ़ने लगी। हरदम खुदा से यही दुआ माँगती—‘या परवर दिगार ! मेरे एकलौते बेटे को दुश्मनों की नज़र से बचाना। मेरे बुढ़ापे की लकड़ी का बाल बाँका न हो।’

लोग बुढ़िया के समीप बैठ उसके बेटे की बहादुरी का बखान करते—कैसे, अमुक गाँव के अफ़रीदी का सिर उसके अचूक निशाने से खरबूजे की तरह उड़ गया। कैसे, बन्नू पुलिस के सिपाही को लुरे के एक ही वार से उसने पार कर दिया। यह सब सुन बुढ़िया का कलेजा बल्लियों उछलने लगता। उसकी भिमभिमि आँखों से उल्लास के आँसू झड़ने लगते। आकाश की ओर अंजली उठाकर वह एक ही दुआ माँगती—‘मेरे बेटे की बंदूक का निशाना कभी ख़ता न हो। दुश्मन का निशाना हमेशा खता जाय।’

जहान मुसाफ़िरों को लूटकर केवल पाप ही संचय करता हो सो बात नहीं। उसी का साहस था जो आज खेनाज़ैल की दुरुह, विरूप चट्टानों के ऊपर श्वेत सुन्दर मसजिद नज़र आ रही है। यह मसजिद जहानगुल की कीर्ति का अमर स्तम्भ है। केवल काफ़िरों को लूटकर ही, बिना किसी की सहायता के उसने इस मसजिद को पूरा किया था। इस मसजिद के लिये उसने क्या नहीं किया ; जान पर खेल बन्नू तक धावे मारे। पेशावर से कारीगर लाया। स्वयं जहानमिट्टी के कच्चे मकान में ही रहा परन्तु ‘खुदा का घर’ चूनागज़ी और पच्चीकारी से चमकने लगी।

परन्तु भगवान तो सदा अपने भक्तों को कष्ट ही देते हैं। जहान बीमार पड़ गया और बीमारी ऐसी कि जिसका सिर-पैर कुछ समझ न आता था। बड़े-बड़े हकीम आये। तसख़ीशें हुईं। जुलाब पर जुलाब दिये गये पर कुछ न बना। वही खूब ज़ोर से जाड़ा लगकर बुखार चढ़ आता। हकीमों ने बताया, जहान के बदन में दो जिन्यों ने

घर कर लिया है। एक है, सर्द जिन्न और दूसरा है, गर्म जिन्न। एक सरदी लगाता है तो दूसरा बदन को गरम कर देता है। अगर सर्द जिन्न को भगाने के लिये बदन को गरमी दी जाती है तो गरम जिन्न ताकत पकड़ता है और अगर सर्दी पहुँचाकर गरम जिन्न को दबाया जाता है। तो सर्द जिन्न जोर पकड़ता है।

एक आलिम हकीम ने बर्फ के समान सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेर कर बहुत धीमी आवाज़ में कहा—जिससे बीमार न सुन सके—‘जब दो जिन्न बदन में दखल कर लेते हैं, बीमार का बचना नामुमकिन हो जाता है। इस वक्त अगर तीसरा जिन्न उन दोनों को मार कर भगा सके, तभी कुछ उम्मीद हो सकती है। बाक़ी पीर की दुआ से सब कुछ है।’

हकीम साहब ने फर्माया, उनके गाँव में जो बेरी वाले पीर हैं अगर उनकी मनौती कर, बन्नू के फिरंगी हस्पताल की कड़वी दवा दी जाय तो फ़ायदे की पूरी उम्मीद हो सकती है। हकीम साहब ने क्रिस्ता कह कर बताया—बेरीवाले पीर जब ज़ियारत के लिये अजमेर शरीफ़ गये थे, फिरंगियों ने उनकी बहुत ख़िदमत की थी। तभी से पीर सैय्यद ने फिरंगियों के कड़वे पानी को दुआ देदी—जो पियेगा दो जिन्न की बीमारी में शफ़ा पायेगा। लेकिन हर हालत में तावीज़ को बाजू पर बाँधे रहना ज़रूरी है।

बेटे की बाँह पर तावीज़ बाँध, जहानगुल की माँ गिरती-पड़ती चट्टानों पर रेंग-रेंग कर बेरी वाले पीर की दरगाह पर जा सूखी बेरी की टहनी में बाँधी असंख्य गाँठों में एक और मनौती की गाँठ बाँध आई और फिर बन्नू के फिरंगी हस्पताल से कड़वा पानी लाकर बेटे को पिलाया।

बेरी वाले की दुआ से जहानगुल के बदन के भीतर के दोनों जिन्न धबराने लगे। लोगों ने समझ लिया, जिन्न भाग गये। जिन्न तो भाग गये परन्तु जाते-जाते जहान को ऐसा धक्का दे गये कि उसका

सिर हरदम घुन्नाने लगा और कानों में साँय-साँय होने लगी। अनुभवी लोगों ने समझाया, इसका इलाज यही है कि जहान बेरीवाले पीर की ज़ियारत करे। शरीर में कुछ शक्ति आते ही जहान पीठ पर मार्टिन-हेनरी लटका, चार साथियों सहित ज़ियारत के लिये चल दिया।

किस श्रद्धा से जहानगुल ज़ियारत के लिये चला था ? परन्तु कानाखेल में जा उसका जो अपमान हुआ, उससे उसका सम्पूर्ण रक्त जल गया। कुछ वर्ष हुए ईद के मौके पर कानाखेल के किसी व्यक्ति के नमाज़ पढ़ने खेनाजैल की मसजिद में जाने पर, खेनाजैल के किसी अभद्र व्यक्ति ने ताना मारा था—‘इतना बड़ा गाँव का नाम और एक मसजिद तक नहीं बना सकते।’ उस ताने के बदले में जहान को यह अपमान सहना पड़ा।

कानाखेल पहुँचने पर उससे कहा गया—‘शरम नहीं आती ? अपनी मसजिद में जाओ ! खबरदार अगर हमारे पीर की दरगाह पर क़दम रखा !’

जहान की आँखों में खून चढ़ गया। तबियत में आया, प्यारी मार्टिनी के सुन्दर मुख से इस अपमान का उत्तर तुरन्त दे। समझदार आदमी था, सोचकर रह गया। जानता था, पराई सीमा में लड़ाई मोल लेकर उसकी बोटी भी घर न पहुँचेगी।

गरज कर उसने कहा—‘पीर की दरगाह का इतना अभिमान ! जो तुम्हारे पीर की दरगाह की तरफ़ मुँह करे, उसपर लानत ! सौ लानत !! उस पर शरम !!!’

जहान कानाखेल से लौट पड़ा परन्तु खेनाजैल न आकर वह बंगाज़ई की ओर गया। बंगाज़ई के सैयद वंश की बड़ी मानता है। यह वंश खुद ‘रसूले अल्लाह वल्लेसल्लम’ के नज़दीकी खानदानों में से हैं। इस वंश के अमीनशाह बड़े पहुँचे हुये पीर थे। बंगाज़ई पहुँच जहान पीरशाह के हुज़ूर में हाज़िर हुआ और उनसे अत्यंत अनुग्रह पूर्वक

खेनाजैल की भूमि को चरण स्पर्श से पवित्र करने की प्रार्थना की और उन्हें साथ ले खेनाजैल पहुँचा ।

खेनाजैल में पीर सैयद के आगत-स्वागत की सीमा न थी । मौलूद हुए, उर्स भी हुए । पास-पड़ोस के बीसियों गाँवों से लोग ज़ियारत के लिए आये । कई रोज़ तक हलवे, मांडे, गोश्त-नान से जहान ने पीर साहिब की तवाज़ह की । पीर साहिब के लौटने का दिन आया । लोगों ने भेंटें चढ़ाईं । पीर साहिब ने दुआएँ दीं ।

जहान श्रद्धा-भक्ति से पीर साहिब को धोड़े पर सवार करा वापिस करने चला । गाँव से आधा मील आकर उसने पीर साहिब से विदा ली । पीर सैयद अपनी भेंट के बोझ को लाद आगे बढ़े । जहान एक चट्टान पर बैठ प्रतीक्षा करने लगा ।

पीर सैयद ने ज्योंही जहान के गाँव की सीमा से बाहिर कदम रखा, जहान ने आसमान की तरफ़ देखकर कहा—‘या अल्लाह बग्श !’ और अपनी मार्टिनी-हेनरी को उठा कन्धे के बराबर सीधा किया । पल भर में आस-पास की पहाड़ियाँ बन्दूक के गर्जन से गूँज उठीं और पीर सैयद आँधे मुँह जमीन पर लोट गये ।

बड़े यत्न और आदर से जहान पीर साहिब की लाश को उठा लाया । तमाम भेंटें ग़रीबों को ख़ैरात करदीं और एक ऊँची पहाड़ी पर, बेरियों की छाया में, पीर सैयद की शानदार क़ब्र बनादी गई । दिन रात दिया जलने लगा ।

तब सुस्थ होकर जहानगुल ने कहा—‘अब दुनिया देखेगी, काना-खेल के पीर की मानता बढ़ी है या खेनाजैल के पीर की ? और शरम है उसपर जो खेनाजैल से कानाखेल जाय ! और लानत है खेनाजैल वालों पर अगर कानाखेल वालों को अपनी दरगाह पर आने दें ।

खेनाजैल वालों ने कलाम पाक की कसम खाकर कहा—वे जान दे देंगे पर अपने नेता की शुभ्र कीर्ति पर धब्बा न लगने देंगे ।

दुखी-दुखी !

लाहौर के तिब्बती बाज़ार, बनारस की दालमण्डी और दिल्ली के चावड़ी बाज़ार में से गुजरते समय शरम से तुम्हारा सिर झुक जाता है, तुम घृणा से नाक सिकोड़ लेते हो । मैं ऐसा नहीं करता क्यों ? सुनो :—

तुम मानोगे नहीं लेकिन सच कहता हूँ, मुँह में अनाज का दाना डाले पूरे चार रोज़ हो गये थे । क्रदम-क्रदम पर पैर लड़खड़ाते थे और आँखों के सामने अँधेरा छा जाता था । पहले तो सिर घूमने लगा और फिर मानों दरद से फटने-सा लगा । दिल में तिलमिलाहट होने लगी, बड़े ज़ोर से उबकाई आती थी, जैसे कै हो जायगी । पर पेट में रखा क्या था ? केवल पानी । पेट की ज्वाला को बुझाने के लिए कभी इस प्याऊ से और कभी उस प्याऊ से पानी लेता था, वही निकल जाता । गलियों में दोनों हाथों से सिर थाम-थामकर मैं नालियों के किनारे कै करने बैठ जाता । भले आदमी मुँह फेरकर निकल जाते । कोई टोक देता, क्या हुआ रे ! नाज़ुक मिज़ाज रूमाल मुँह पर रख, एक ओर थूँककर चले जाते ।

पहली रात तो स्टेशन के सामने जो बाग़ है, क्या कहते हैं उसे ; हाँ, विक्टोरिया गार्डन, वहीं एक बेंच पर लेट कर गुज़ार दी । दूसरी रात

जमुना किनारे बाँध पर जा लेटा । तीसरी रात मन बहुत ही बेचैन था । पैरों में चलने की शक्ति न थी । सिर में दरद अधिक था । उस समय न जाने क्या ढूँढ़ता खोजता, किस अन्धी आशा में, किस प्रयोजन से, जामा मसजिद के समीप से चला जा रहा था । उस समय परेड में सड़क के किनारे की पटरी पर कुछ आदमी लेटने की जगह ठीक कर रहे थे । जगह की किसी प्रकार की कमीन रहने पर भी जगह के लिए भगड़ा चल रहा था । एक फ़कीर इकतारा बजाकर कुछ गा रहा था । वहाँ पहुँचकर मुझे अनुभव हुआ मानों एक ठिकाने पहुँच गया हूँ । पहिले दो दिन की तरह लजा के कारण एकांत ढूँढ़ने की इच्छा न हुई । घृणा के कारण उन लोगों से भाग जाने की भी इच्छा नहीं हुई । उन्हीं लोगों की संगत में मैं भी एक और लेट गया । ओफ़ इंसान, क्यों और कैसे बदल जाता है ?

सोचने लगा, अब क्या होगा ? घर वालों को खबर कैसे होगी ? लेकिन इस बात को तो मैं तीन दिन और दो रात से सोच रहा था । सोचते-सोचते थक गया तो समीप लेटे हुए आदमियों की बातचीत सुनने लगा ।

चौथे दिन सोचा, मिथ्या लजा में क्या रखा है ? जैसे सैकड़ों आदमी हाथ पसार कर माँग लेते हैं, उसी तरह मैं भी माँग लूँगा । जब मेरा सब कुछ भाग्य ने छीन लिया तो भाग्य की ही इच्छा पूरी हो । परन्तु किसी भद्र पुरुष के समीप पहुँचने पर जिह्वा जड़ हो जाती । सोचने लगता—क्या यह मेरी बात सुनेगा ?

बचपन से माँ के अतिरिक्त कभी किसी से कुछ माँगा नहीं । माँ ने सदा यही सिखाया था—‘बेटा कभी कोई कुछ दे तो भी नहीं लेना ।’ उस समय मालूम हुआ, यह केवल भरेपेट का अभिमान था ।

स्टेशन के समीप बार-बार जाता । जान पड़ता था स्टेशन मेरे घर का दरवाज़ा है जो पैसे की चाबी से खुल सकता है परन्तु वह चाबी मेरे पास थी नहीं—खो गई थी । इसी से मैं बेघरबार था—निराश्रय था ।

स्टेशन से फ़तेहपुरी पहुँचा । फ़तेहपुरी में साँझ को कैसी भीड़ होती है सो जानते ही हो । जन प्रवाह में बह रहा था । न जाने कौन प्रेरणा—कौन शक्ति दिन भर में कई दफे मुझे पूरी-पराठे की दूकानों के सामने ले जाती । अनेक बार सतृष्ण नेत्रों से मैं उन पदार्थों को देखता, भीषण परिमाण में उन्हें निगल जाने की इच्छा होती । यहाँ तक कि सड़क पर बैठे क़बाब फ़रोश के सामान को, जिसके समीप से गुजरते समय नाक पर रूमाल रख लेना पड़ता है, मैं लोलुप दृष्टि से देखने लगता । हलवाई की दूकान पर से पूरी खाकर जो लोग पत्ते फेंक देते थे, उनमें भोजन पदार्थ का कुछ अंश देख हाथ उस ओर जाना चाहते परन्तु अभी शरीर पर कपड़े बाक़ी थे । उनका ख़याल ही हाथों को रोक देता था—आत्मा का अभिमान उड़ गया था लेकिन कपड़ों का अभी बाक़ी था ।

भूख बुरी चीज़ है । उसके ज़ोर हाथी और शेर भी सूत आ जाते हैं ; मनुष्य की क्या बिसात । एक गली में देखा, एक धर्मप्राण हिन्दू नारी सांड को रोट खिला रही थी । आँखों में आँसू आ गये । दाँतों से ओंठ काट, बड़ी मुश्किल से उन्हें रोका ।

कह रहा हूँ, बिना किसी प्रयोजन के जिस ओर पैर उठते, उसी ओर दिवारों का सहारा ले-लेकर चला जा रहा था । आ पहुँचा, हौज़-काज़ी ! होश हवास दुरुस्त रहते जहाँ आकर गर्दन झुकाकर तुरन्त भाग जाना चाहिए, वहीं बहुत आहिस्ता-आहिस्ता इधर-उधर देखता टहल रहा था । संकोच क्या होता ? एक तरह से ज्ञान-शून्य, अनुभूति-शून्य, संज्ञा-शून्य हो रहा था । रोशन थियेटर से अजमेरी दरवाज़े की ओर जो जगह है, जहाँ नीची बेरौनक दुकानें हैं और ऊपर अंधेरी कोठरियों में टूटी हुई चिकों की आड़ में ग़रीब रंडियाँ रहती हैं, वही मैं टहलने लगा ।

जैसे डाक्टर, वकील और दुकानदारों में छोटे-बड़े का दर्जा है, वैसे ही रंडियों में भी है । एक रंडियाँ रहती हैं चावड़ी में । जहाँ अट्टालि-

काष्ठों पर फूलों के गजरे लटके रहते हैं। रंगीन काँच के मनकों के पदों के पीछे बिजली से चकाचौंध, भाड़-फानूस से लदी छतें दिखाई देती हैं। बाज़ार ख़स और हिना की गंध से भरा रहता है। ऊपर से नूपुरों की झनकार, तबला, बेला और सारंगी की सुर लहरी के बीच हँसी का कोलाहल सुनाई पड़ता रहता है।

दूसरी रंडियाँ हैं रोशन थियेटर से नीचे की ओर। प्रायः धुन्धली दीवारगिरी लालटेन छजे के खम्भे से लटकी रहती है और उसके साथ ही, जैसे रोशनी पर आये पतंगों को निगलने के लिए छिपकली ताक लगाये बैठ रहती है, वैसे ही मुँह पर सफ़ेद रंग पोते रंडियाँ ग्राहकों की बाट जोहा करती हैं। कहीं-कहीं मिट्टी के तेल की दिबरी धुँआँ उगलती दिखाई देती है और उसके समीप एक सूखा सा हताश मुँह प्रतीक्षा में आँखें फैलाए दिखाई देता है।

मैं कभी क्रदम-क्रदम चलने लगता और कभी गिरते शरीर को सम्भालने के लिए कमर पर हाथ रख ऊपर-नीचे, इधर-उधर देखने लगता। मुझे जान पड़ा, ऊपर संकेत से मुझे कोई बुला रहा है। फिर ऊपर देखा, मिट्टी के तेल की दिबरी के समीप बैठनेवाली कुछ रंडियाँ आमने-सामने से मुझे पुकार रही थीं। चार दिन में उस समय मुझे पहिली दफ़े किसी ने अपने समीप आने के लिए कहा था। विमूढ़ता की अवस्था में जो दाईं और सबसे समीप थी, उसी की ओर देखकर मैंने पूछा—‘क्या है?’

उतावली में उसने जवाब दिया—‘जो चाहे दे देना।’

‘देना’—शब्द सुनकर मेरा उत्साह भंग हो गया परन्तु उसका उत्साह नहीं टूटा। उसने मानों बिलख कर कहा—‘अरे खुदा के वास्ते आजाओ, आजाओ!’

मैं समझता हूँ, चार दिन निरन्तर भूखा रहने से मनुष्य में विवेक और व्यक्तित्व नहीं रह जाता। मशीन की तरह उसके हुकुम से मैं जीने

पर चढ़ने लगा । ज़ीने पर पैर लरज रहे थे । दोनों ओर की दीवारों का सहारा ले ऊपर चढ़ रहा था । उस समय भी यह खयाल न आया, मैं ऊपर क्यों जा रहा हूँ ?

उसने कंधी-पट्टी कर बाल ज़रूर बाँधे हुए थे परन्तु उसके शेष कपड़ों को देख उसे मैंने किले के सामने परेड में सोने वाले जीवों से भिन्न नहीं समझा । ऊपर कच्ची कोठरी में एक चटाई बिछी थी और मिट्टी का एक बदन रखे था । प्रश्नात्मक दृष्टि से मैंने उसकी ओर देखा । उसने गिड़गिड़ाकर उत्तर दिया—

‘जो तुम चाहो, अल्ला के नाम पर दे देना । मैं मरी जा रही हूँ । आज चार रोज़ मुझे यहाँ आये हो गये । अल्ला की कसम, एक दाना मुँह में नहीं गया ।’

न जाने क्यों, मैंने पूछ लिया—‘यहाँ कैसे आई ?’

उसका दुःख उबल पड़ा । रोकर उसने बताया, उसका मालिक उसे मार पीट कर दूसरी लुगाई को ले कहीं चला गया । जब तीन दिन भूखी घर में बैठी रोती रही तो एक ‘मामा’ उसे ढांडस बँधा कर यहाँ बैठा गई । पैसा आने पर आधा-आधा बाँट लेने की बात थी ; पर क्रिस्मत, एक भी आदमी नहीं आया, भूख के मारे जान निकली जा रही थी । मामा आयी थी । मिट्टी के तेल की डिबिया जला गई, ढाढ़स बँधा गई कि आदमी आयेंगे ।

वह जो अपने शरीर का सौदा करने बैठी थी, न जाने क्यों मुझे उसके प्रति ज़रा भी ग्लानि न हुई । कह नहीं सकता, मेरा सद-विवेक मर गया था या स्वयम् मेरे अपने पेट की आग उसकी ओर से सफ़ाई दे रही थी । उस समय एक रोटी के लिए मैं क्या कुछ करने को तैयार न हो जाता, यह आज नहीं कह सकता ।

अपने ही जैसे दूसरे व्यक्ति को पा, अपना दुःख मैंने भी कह सुनाया—कुछ खाये चार रोज़ मुझे भी हो गये । जालंधर में मकान है,

इमतिहान पास कर कलकत्ते में चाचा के पास नौकरी करने जा रहा था। एक दिन के लिये दिल्ली देखने को ठहर गया। घर के लोगों ने समझाया था, दिल्ली में जेबकट बहुत हैं। इसलिये सब सामान, रुपये और कलकत्ते का टिकट सन्दूक में रख, सराय की कोठरी में ताल लगा, बाज़ार से खाना खानेभर के पैसे ले गया था। तीन घण्टे बाद घूम फिर कर लौटा तो कोठरी चपाट खाली पड़ी थी। धबरा गया कोई अपना है नहीं, बैठने को ठांव नहीं.....।

सूखी निराश दृष्टि से मेरी ओर देख उसने कहा—‘तो फिर तू यहाँ क्यों आया ? और रो पड़ी।’

ज़िना उतरना चढ़ने से कहीं अधिक कठिन जान पड़ा। एव सीढ़ी पर साँस लेने को बैठा था, उस समय खयाल आया दुखी दुख को क्या सहायता दे सकता है ?

नीचे उतरा ही था कि एक सिपाही ने डाँट कर पूछा—‘क्यों क्या हो रहा है ?’ चुप रह गया,—क्या जवाब दे सकता था ?

‘क्यों बन रहा है बे ?’—सिपाही ने कहा। मैं फिर भी कुछ न कह सका। डाँट कर उसने कहा—चल थाने में १०६ में चालान होगा।’

१०६ और ११० क्या होता है, नहीं जानता था। खैर थाने जान ही पड़ा। थाने न जाता तो शायद कभी घर न पहुँच पाता।

लम्बोदर थानेदार की भीषण मूर्ति देखते ही सुध कुछ ठिकाने आ गई।

काँपते-काँपते बोला—Sir I am innocent (हुजूर मैं बेकसूर हूँ)। अंग्रेज़ी के इस वाक्य से सब काम बन गया। घर तार दिया गया और सब काम हो गया.....परन्तु वह सन्ध्या।

इसी से अब उन बाज़ारों से आते-जाते मुझे कुछ घृणा और लज अनुभव नहीं होती।”

भावुक—

परीख के जीवन की महत्वाकांक्षा अभी कल्पना में ही परिमित है । कालिज की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् बिना दुविधा के उसे बैंक में नौकरी मिल गई । समय आने पर वह अकाउण्टेण्ट, बैंक-सेक्रेटरी या मैनेजर बन जायगा, इसमें किसी को सन्देह नहीं ।

पग-पग पर पेट की चिन्ता न रहने के कारण उसके स्वभाव और व्यवहार में कमीनेपन के लिये गुंजाइश नहीं । जीवन में पूर्णता की ओर उसका लक्ष है । स्वभाव में कुछ उच्छृङ्खलता, कुछ भावुकता का मिश्रण होने से उसका व्यवहार इस ढंग का है कि पुरुष सहयोगियों में विशेष समादर न पाकर भी स्त्री-समाज में वह सहानुभूति पाता है । स्त्रियों के पीछे दौड़ने वालों में उसकी गिनती नहीं । परन्तु उसका हृदय-मन्दिर 'प्रतिमा' से शून्य न था ।

मन में 'प्रतिमा' की आराधना करने पर भी उसके मुँह पर ताला था । कुछ परिस्थिति भी ऐसी ही थी । भले आदमियों के जिस मुहल्ले में मकान का हिस्सा ले वह अकेला नौकर के साथ रहता था, उसी मुहल्ले के एक अभिजात और अति सुसंस्कृत परिवार में उसे जब-तब आने-

जाने का मौका रहता । इसी परिवार की एक कुमारी के प्रति हृदय को अंजली में ले उसने अर्पण कर दिया ।

×

×

×

परीख के मन में सभी सद्गुणों की अपेक्षा 'वफ़ादारी' के प्रति विशेष श्रद्धा है । यहाँ तक कि कुत्तों को वह निकटतम सम्बन्धी की अपेक्षा भी अधिक प्यार की नज़र से देखता है । उसके पास कोई कुत्ता न था । जीवन की यह न्यूनता उसके मन में खटकती रहती । सलीके (Fashion) से रहने के लिये भी कुत्ता एक आवश्यक चीज़ है ।

सन्ध्या समय वह कदम-कदम मकान लौट रहा था । मुख्य सड़क के एक बँगले से एक पिल्ला उसके पीछे हो लिया । पिल्ले का वह गदबदा, धुँधराले बालों में लिपटा, ऊन के बंडल सा शरीर और छोटी-छोटी टाँगों से उसका पीछे दौड़ते चला आना देख उसका मन उमंग-उमंग कर रह जाता ।

परीख सड़क से गली में पहुँचा । आधी गली पारकर भी जब पिल्ले की वफ़ादारी कम न हुई तो उसकी अवहेलना करना परीख के लिए सम्भव न रहा । उसने उसे गोद में उठा लिया और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा वह मकान पर आ पहुँचा ।

पिल्ला बहुत ही कमसिन था । शायद वह स्वयम् पानी या दूध न पी सके इसलिये परीख ने उसे रुई की बत्ती बना दूध पिलाना शुरू किया । परन्तु पिल्ले को स्वयम् दूध पीते देख उसके मन की कली खिल गई सम्भवतः वैसे ही जैसे नवजात शिशु को स्तनपान करा माता का हृदय संतुष्ट हो जाता है ।

बच्चों के सम्पर्क में जवान और बूढ़े भी बच्चे बन जाते हैं । एकान्त में तोतले बच्चे को गोद में ले महाविद्वान और विचक्षण भी कैसे मुँह बना-बना नितान्त प्राकृतिक भाषा में, जिसे किसी दूसरे हमसखुन के लिये समझना दुशवार है, तुतलाने लगते हैं ? उस समय हम शायद

शिशु को उसी की भाषा में बोलकर समझा देना चाहते हैं। पानी को 'मम' दूध को 'दुदू' और 'रोटी खाओ' को 'लोती काओ' कहने लगते हैं। आँखें चमकने लगती हैं, होठ आगे बढ़ जाते हैं और नाक उन्मेश में फूल जाती है।

यह सब लीला परीख अपने एकान्त कमरे में 'मल्ली' (पिल्ले) के साथ करता था। अपने हाथ से उसे दूध पिलाता, सेंट लगा देता और मकान पर अधिकांश समय उसे गोद में लिये रहता। बैंक जाते समय नौकर को मल्ली के विषय में सब बात बारीकी से समझा देने पर भी बैंक के काम काज के बीच उसका ध्यान अनेक बेर मल्ली की ओर खिंच जाता।

हृदय की 'प्रतिमा' के अतिरिक्त उसे किसी की चिन्ता थी तो मल्ली की। 'प्रतिमा' संकोच से घिरी एक महत्वाकांक्षा थी। उसका क्षेत्र था कल्पना। परन्तु मल्ली थी प्रत्यक्ष और स्थूल सत्य जो परीख के मन पर अधिकार कर बैठी। वह 'प्रतिमा' के विषय में मुँह न खोल सकता था। वया किसी के लिए उस प्रेम की महत्ता और सूक्ष्मता को समझ सकना सम्भव था।

दो सप्ताह, जब से मल्ली आई, परीख के मन में यह उधेड़ बुन न हुई कि किस प्रकार बिना संदेह का कारण पैदा किये वह उस सभ्य नव-संस्कृत परिवार में जाकर 'प्रतिमा' का दर्शन कर आ सके? वह मल्ली से उलझा रहा। कहते हैं, जिन बच्चों का अधिक यत्न होता है, वही अधिक बीमार रहते हैं। मल्ली भी बीमार होगई। उसकी दौड़ धूप बन्द होगई। दूध पीना उसने छोड़ दिया। एक डाक्टर के यहाँ से अपने लिये हाज़मे की दवाई लाकर उसने मल्ली को खिलाई पर कुछ न बना।

मल्ली का दुख देख, संकोख छोड़ परीख सब कुछ करने को तैयार होगया। डाक्टर से राय लेने पशु-हस्पताल तक गया। शनिवार को वह

एक बजे ही बैंक से लौट आया। मल्ली की हालत खराब थी। एक छोटी सी टोकरी में उसे ले वह फिर हस्पताल गया। डाक्टर ने उपेक्षा से देखकर कहा—‘यह कुतिया बचेगी नहीं।’ परीख के मानो हृदय पर दिवार गिर गई। मन के आवेग को दबा उसने डाक्टर से पूछा—‘फिर’ !

डाक्टर ने उसके मनकी करुणा का आभास पाकर सलाह दी—‘इसे तकलीफ़ बहुत ज्यादा होरही है, आप चाहें तो क्लोरोफार्म कर दिया जाय, तकलीफ़ से बच जायगी।’

कुछ देर करुणा आँखों से बिलखती हुई मल्ली की ओर देख एक गहरा साँस खींच उसने कहा—‘अच्छा’।

परीख के देखते-देखते मेहतर ने एक तार की प्याली में रुई रख, उस पर दवाई छोड़ मल्ली के मुँह पर प्याली को दबा दिया। मल्ली दम घुटने से कुछ छटपटाई पर कुछ ही क्षण में वह निश्चल होगई। उसकी पीड़ा समाप्त हो गई। मेहतर ने मल्ली को पूँछ से उठा एक ओर फेंक दिया। परीख के चेहरे की त्वचा से मानों ज्वाला सी निकल रही थी। फ़ीस का एक रुपया डाक्टर की मेज पर फेंक, वह बाइसिकल पर लौट पड़ा।

ज्यों-त्यों ओठ दबाये वह मकान तक पहुँचा, साइकल बरामदे में फेंक वह भीतर कुर्सी पर बैठा ही था कि नौकर ने एक तार का लिफ़ाफ़ा उसके हाथ में लाकर दिया।

तार छोटे भाई का था। उसने परीक्षा में पास होने की खुशखबरी भेजी थी। परीख के आहत हृदय पर इस समाचार का कुछ भी असर न पड़ा। वह मुँह ढाँपकर कुर्सी पर पड़ रहा।

मेज़ पर चाय रख कमरे का पर्दा उठा उसे बुलाने के लिये नारायण ने भीतर भाँका। लेकिन आँखों पर रूमाल रखे उसे चुपचाप पडे देख बिना किसी किसम की आहट किये वह लौट गया।

गिरधारीलाल बाबू मुहल्ले के नारद थे । दफ्तर से लौट प्रायः वे परीख के समीप बैठ सटक से खमीरा सटका करते । नारायण से उन्होंने पूछा—‘बाबू कहाँ हैं’ ? नारायण समझदार नौकर था । उसने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—‘भीतर बैठे हैं, तबियत कुछ खराब है ।’

तबियत की खराबी का कारण पूछने पर उसने बहुत धीमे स्वर में बताया—‘बहुत दिन से बुआजी की तबियत खराब थी.....आज अभी तार आया है । तभी से.....बुआ जी इन्हें बहुत मानती थीं ।

‘हूँ’—कहकर गिरधारीलाल बाबू ने परदा हटा कर देखा, परीख अब भी आँखों पर रूमाल रखे पड़ा था । गिरधारीलाल भी पीछे हट आये ।

ऐसी नाजुक हालत में अकेले भीतर जाने की अपेक्षा दो-चार इष्ट-मित्रों को साथ लेकर सान्त्वना बँधाने जाना ही उचित था । सामनेवाले मकान में इस समय लाला अर्जुनलाल नित्य संगीत का अभ्यास किया करते थे । दुर्घटना की खबर पा उन्होंने बाजा बन्द कर दिया और नीचे आगये ।

पन्द्रह बीस मिनट में तीन चार सज्जनो ने दबे पाँव परीख के कमरे में प्रवेश किया और चुपचाप बैठ गये । ला० श्रीराम बयोवृद्ध थे, उन्होंने खाँस कर गम्भीर स्वर में कहा—‘बेटा परीख !’

परीख ने आँख पर से रूमाल हटाकर देखा—सहसा इतने आदमियों के चुपचाप आकर बैठ जाने से वह सहम-सा गया । आँखें पोंछ लेने पर भी उनमें आद्रता और लाली बाकी थी ।

लाला श्रीराम ने पूछा—‘बुआजी को कितने दिन से तकलीफ़ थी ? उनकी आयु भी काफ़ी होगी ? इस तरह दिल छोटा करना ठीक नहीं । तुम तो खुद समझदार हो, संसार की गति तो तुम जानते हो, ऐसी ही है ।’

बाबू गिरधारीलाल ने पूछा—‘बुआजी को क्या तकलीफ़ थी ?’

परीख के लिए कुछ कहना कठिन था। उसका गला रुँध रहा था। वह कुछ समझ न सका। अर्जुनलाल ने पूछा—‘बैंक से लौटकर ही तो आपको तार मिला है न ! दो बजे मुझे नारायण गली में मिला था उस वक्त तक तो कोई खबर नहीं आई थी।’

परीख की समझ में समस्या आ गई, उसके मुख पर दोहरी मोहर लगा गई। इन भले आदमियों के सम्मुख भेद को खोलकर रख देने की उसकी हिम्मत कैसे हो सकती थी ? अपने हृदय के क्षोभ का कारण वह किस प्रकार प्रकट कर सकता था ? एक पिछे के लिए एक जिम्मेदार, सुशिक्षित व्यक्ति का रोना, क्या विश्वास कर लेने लायक बात है ?

परीख हथेली पर टोड़ी रखे चुप बैठा रहा। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। अपने दुख से और लोगों की गलतफ़हमी की चोट से उसका मन और भी व्याकुल होने लगा। इन भद्र पुरुषों का यह भ्रम उसे एक प्रकार का अत्याचार मालूम हो रहा था। मानों उसे लजित करने के लिए ही सबने मिलकर एक प्रकार का षडयंत्र रच डाला हो।

प्रायः पैंतालीस मिनट तक उसे भरपूर आश्वासन दे भद्र पुरुष विदा हो गये। परीख इन लोगों से छुटकारा पाने की तसल्ली में सौंस भी लेने नहीं पाया था कि ‘प्रतिमा’ का भाई आ पहुँचा। फिर वही सांत्वना, समवेदना के निश्चित, परम्परागत शब्द उसके कानों में गये और उसकी ग्लानि को कुरेदने लगे।

प्रभात के उठकर जाते ही परीखने सोचा, न जाने अभी कितने और भले आदमी आकर तमाशा करेंगे ? कल रविवार की छुट्टी है ही, इस झगड़े से पिएड छुड़ाने के लिये क्यों न एक दिन के लिये वह जालन्धर चला जाय ?

नारायण को बुलाकर उसने तुरंत टाँगा लाने के लिये कहा और एक सूट केस में जरूरी कपड़े डालकर तैयार हो गया।

एक्सप्रेस तेज़ी से चली जा रही थी। ठण्डी हवा के झोंकों और गाड़ी की तीव्र गति ने उसके लुब्ध हृदय को अपनी गोद में झुला-झुलाकर उसके मन के बोझ को बहुत कुछ हलका कर दिया।

अब दूसरी उलझन उसे व्याकुल करने लगी। वह यों एकाएक केवल एक दिन के लिये घर दौड़ आने का क्या माकूल कारण बता सकेगा ? बुआ की बहुत याद आई थी कह देने से निम्नसन्देह उनका मन अभिमान से गदगद हो जायगा परन्तु क्या इससे पिताजी और भाई का समाधान हो सकेगा ? छोटे भाई को पास होने की बधाई देने आने की बात अलबत्ता मौजू थी लेकिन वह था रुड़की में। खैर, कुछ कह दिया जायगा। अब लौट चलने की गुंजाइश न थी।

×

×

×

परीख दुपहर का खाना खाने के बाद बरामदे में बैठा पिताजी से बैंक में अपने सुअवसरों और कठिनाइयों की आलोचना कर रहा था। तार का चपड़ासी आया और परीख के नाम का एक तार देकर लौट गया।

पिताजी ने कहा—‘क्या है, देखो तो अर्जेंट तार है।’

परीख ने लिफाफा फाड़कर देखा—तार में लिखा था,—“हार्दिक शोक और समवेदना, परमात्मा मृतात्मा को शांति और सम्बन्धियों को सांत्वना प्रदान करे।” नीचे हस्ताक्षर थे ‘प्रतिमा’ के। उस शोक में भी आदर के उस पात्र से समवेदना पा उसका हृदय उमड़ उठा। परीख के होठों पर मुस्कराहट फिर गई, देखकर पिता ने पूछा—‘क्या खुशखबरी है ?’ परीख ने जल्दी में कोई उत्तर न पाकर कहा—‘एक मित्र ने पास होने की खुशखबरी दी है।’

पिता ने पूछा—‘क्या वह भी रुड़की में पढ़ता है ?’ परीख ने तुरंत कहा—‘नहीं, दिल्ली सेक्रिटेरियट में नौकरी के लिये कम्पीटिशन में गया था।’

सोमवार को बैंक में हाज़िर होने के लिये रात की ट्रेन से लौटना ज़रूरी था। फुर्सत में उसने सोचकर एक बयान तैयार कर लिया। वह जानता था लाहौर लौटने पर सभी परिचित भद्र पुरुष बुआजी के लिये शोक प्रकट करने के लिये उसे घेर लेंगे। बैंक में भी लोगों की हमदर्दी के उत्तर में उसे कुछ कहना ही होगा।

टाँगे पर गली में से 'प्रतिमा' के मकान के सामने से गुज़रते हुए उसे जान पड़ा, खिड़की में से 'प्रतिमा' ने उसे देख लिया है। घर पहुँच बैंक के लिये कपड़े बदल वह बैठा ही था, नारायण ने खबर दी—प्रभात बाबू की बहिन जी आई हैं।

परीख बाहर निकल आया। 'प्रतिमा' के चेहरे पर समवेदना की छाप बहुत गहरी और स्पष्ट दिखाई दे रही थी। परीख द्वारा पेश की गई कुर्सी पर बैठकर 'प्रतिमा' ने पूछा—'क्या बुआजी की तबियत बहुत दिन से खराब थी?'

परीख ने तुरन्त उत्तर दिया—'हाँ थी तो परन्तु मुझे कुछ मालूम न था। उनके यहाँ से बसों से कोई पत्र भी नहीं आया था। वे रिश्ते में बुआजी की बहिन लगती थीं। बचपन में मैं उनकी गोद में खेला था, वे मुझे बहुत मानती थीं, उनके अपना कोई था भी नहीं।'

दूर के सम्बन्ध की बात जानकर 'प्रतिमा' के चेहरे की गम्भीरता में बहुत कुछ फरक पड़ गया। प्रशंसा के तौर पर उसने कहा—'वे बेचारी आपकी दूर की सम्बन्धी थीं तिस पर भी आपने उनके लिये इतना अनुभव किया। आप बहुत ही करुण स्वभाव और भावुक हैं। जितनी बेपरवाही आप व्यवहार में प्रकट करते हैं, दरअसल वह आपकी आर्द्रता का वाह्य आवरण है। बात कहकर 'प्रतिमा' के ओठों पर भीनी-सी मुस्कराहट फिर गई।'

'भावुकता' के प्रसंग ने परीख के हृदय में अपने दुख के 'वास्तविक कारण' की स्मृति को ताजा कर दिया। एक दफ़े उसे अनुभव हुआ

‘वास्तविक कारण’ को छिपाने की कुछ भी आवश्यकता न थी—कम-से कम ‘प्रतिमा’ के सम्मुख तो वह लज्जा का विषय न होकर महत्ता का ही कारण होता । भेद को यथातथ्य रूप में प्रकट कर वह इस हृदय-वंद्या रमणी की दृष्टि में न जाने कितना ऊँचा स्थान पा सकता था ? वह इसी विचार में डूब गया ।

परीख को दुविधा में देख ‘प्रतिमा’ ने कहा—‘भावुक से मेरा अभिप्राय कुछ और नहीं, मैं आपके हृदय की ममता और कृतज्ञता की ही बात कह रही थी ।’

परीख ने एक दफ़े कह देने के लिये साँस लिया परन्तु विवश होकर चुप रह गया । कुछ क्षण बाद परीख ने कहा—‘ममता का भी एक क्षेत्र है, सीमा है । उसे बखेरते फिरने से उसकी क्रूर शेष रह जायगी ?’

प्रतिमा ने गम्भीर होकर कहा, ‘नहीं, यदि ममता और कृतज्ञता की सीमा नियत की जायगी तो वही सीमा मनुष्यत्व की भी होगी ।

परीख ने कहा—‘यदि ममता और कृतज्ञता की आपके हृदय में इतनी क्रूर है तो एक कुत्ता पालिये ।’

प्रतिमा ने मुस्कराकर कहा—‘आपने तो एक पाला है न ?’

परीख के चेहरे पर वेदना की कालिमा छा गई । प्रतिमा उसी ओर देख रही थी, मानों सहसा नींद से जागकर उसने कहा—‘ओह !’



मृत्युञ्जय

“Questi non hanno speranza di Morte,
E, la lor cieca vita e tanto bassa,
Che invidiose son d; ogni altra sorte.”

“Canto terzo.”—Inferno,’ Dante.

“उन्हें मर जाने की भी तो आशा नहीं,
और उनका आशा-किरण रहित जीवन इतना निकृष्ट है,
कि किसी भी प्रकार का परिवर्तन आये, वे उसके लिये आकुल हैं।”

‘तीसरा अध्याय—नरक’, दांते

• उपनिषदों में कथा है :—नाचिकेता यमराज के द्वार पर धरना देकर जा बैठे। उस समय यमराज अपने भैंसे पर सवार हो कहीं बाहिर गये थे। जब वे लौटे, ब्राह्मण बालक को उनके द्वार पर बैठे तीन दिन बीत चुके थे। वे तीनों दिन रात उस ब्राह्मण-तनय ने निराहार ही बिता दिये थे। ब्राह्मण को भूखा रखने के महापाप से यमराज भी थरा उठे। हाथ जोड़कर बोले—‘हे ब्राह्मण तनय ! भोजन कर कृतार्थ कीजिये।’

नाचिकेता ने उत्तर दिया—‘वरदान पाने पर ही अन्न ग्रहण करूँगा।’

यमराज वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। नाचिकेता बोले—‘मृत्यु को जीतने का उपाय जानना चाहता हूँ।’

यमराज ने इसके बदले पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य देने की इच्छा

प्रकट की परन्तु ब्राह्मण बालक अपने हठ पर डटा रहा । कहते हैं, वह रहस्य उसने जान लिया । तब से भारत की ब्राह्मण संतान के हाथ वह ज्ञान बपौती के रूप में चला आता है ।

मृत्यु को जीतने का अर्थ है, मृत्यु से भय न करना । डाक्टर प्रताप ने 'यम-नाचिकेता सम्वाद' पढ़ा था या नहीं, नहीं जानता । शायद नहीं ही पढ़ा होगा परन्तु मृत्यु उससे हार मान गई थी, यह मेरा विश्वास है । किस ढंग से वह मृत्युञ्जय होगया, यह उसी के मुख से नीचे देता हूँ । सम्भव है कोई वाग्मी तत्त्वज्ञ एक उपनिषद् उसके नाम से भी बना सकें ।

×

×

×

‘मैंने जब से सुध सम्भाली, माँ को ही जाना । ग़रीब माँ का एक-लौता बेटा था । पिता मृत्यु से पूर्व कुछ रुपये छोड़ गये थे । माँ ने उनमें से कभी एक पैसा न छुआ । तुम्हें विस्मय होगा, मेरी माँ ने मुझे लोगों के घर का चौका बर्तन करके पाला है । पिता जो कुछ छोड़ गये उसमें सदा वे कुछ डालती ही गई, इस विचार से कि लड़के की पढ़ाई में लगेगा ।

बच्चों को समझ नहीं होती । मैं भी बचपन में वैसा ही था । स्कूल में किसी लड़के की गोटेदार टोपी देख बिगड़ उठता । धरती पर लोट-लोट कहता—‘मैं भी ऐसी टोपी लूँगा । माँ मुझे गोद में उठा कर मनातीं—‘मैं अपने राजा बेटा के लिये बहुत बढ़िया टोपी बाज़ार में बनने दे आई हूँ । मेरा राजा बेटा पहनकर स्कूल जायेगा ।’ इस तरह मैं कितनी चीज़ों के लिए मचल उठता । उस समय मैं नहीं समझता था परन्तु अब समझता हूँ—माँ को इससे कितना कष्ट होता था । उसकी आँखों में आँसू छलछलता आते । एक लम्बी साँस ले वह कहती—‘हाय राम जी’ ।

स्कूल में आधी छुट्टी के समैय लड़के पैसा खरचते हैं । उस समय

मैं सतृष्ण नेत्रों से खोमचे वाले के चारों ओर घूम-घूमकर उन्हें चाट खाते देखता । जिस दिन रहा न जाता, माँ का आँचल पकड़ धरती पर लोट-लोट पैसे के लिए जिद्द करने लगता । माँ वही बात कहती—‘बेटा कल पैसा दूँगी ।’

वह मुझे गोद में ले झूठी हँसी हँसने का यत्न कर कहती,—‘मेरा राजा बेटा डाक्टर बनेगा, सन्दूक भर रुपये लायेगा ।’ हमारी हालत कितनी गरीबी की थी ; पर सुखी थे ।

जब मैंने मिडिल का इम्तिहान दिया, हम लोगों के यहाँ एक ही चारपाई थी । दो बोरियाँ बिछा हम लोग रजाई ओढ़ लेते । धोबी का धोया कपड़ा मैंने मेडिकल कालेज में भरती होने तक नहीं पहना ।

जब मिडिल की परीक्षा में मैं छात्रवृत्ति लेकर पास हो एन्ट्रेस में भरती होगया, माँ के दूसरों का चौकावर्तन करने की बात सोच सिर लज्जा से नीचे होने लगा । पर माँ मानती ही न थी । छः रुपये में हम दोनों का निर्वाह हो सकता था । आखिर माँ भी तो सात-आठ ही कमाती थी । माँ कहती—‘बेटा तेरी कॉलिज की पढ़ाई का खर्च कैसे जोड़ूँगी, और फिर लाल तेरा व्याह भी तो मुझे करना है ।’

धमकाकर कहा—‘अगर तू लोगों का चौकावर्तन करेगी तो मैं चौकवाले कुएँ में कूद पड़ूँगा ।’

माँ ने विष्णु, महेश, काली मना कर कहा—‘बेटा ऐसा कुवचन मुँह से नहीं बोलना ।’ अस्तु चौकावर्तन का काम छुटा । उसने दूसरा काम निकाल लिया । वह नारे-आज़ारबन्द बुनने लगीं । कभी बीज छीलकर दो पैसे की मज़दूरी कर लेतीं ।

जब एन्ट्रेस की परीक्षा में उत्तीर्ण हो मैंने पन्द्रह रुपये का वजीफ़ा पाया, माँ की प्रसन्नता का ठिकाना न था । उसने मुहल्ले भर में बतासे बाँटे । वह मेरा नाम लेकर जीती थी । कड़ी मेहनत और उपवास से अस्थि पंजर मात्र अवशिष्ट उसके शरीर में यों ही रौनक रहने लगी ।

हमारी अपनी हैसियत के लोग आ-आकर माँ से मेरे व्याह की बात-चीत करने लगे। माँ सब का दिल रखकर बात करती परन्तु उसने किसी से हामी नहीं भरी। उसे विश्वास था, उसके लड़के की बरात किसी डिप्टी या दीवान के यहाँ जायगी।

अब उसे एक और चिंता लगी। लड़के को कहीं कुछ हो न जाय। मेरी रक्षा के लिये वह नित्य प्रातः नदी स्नान कर पूजा करने लगी। उसकी धारणा थी, मेरा, कल्याण रावी किनारे वाले महादेव जी की प्रसन्नता पर निर्भर है। इसलिये वह नित्य बड़े सवेरे उठ, महादेवजी के चरणों में प्रणाम करने 'रावी' जाने लगी। गर्मी, सर्दी, आँधी, बर्सात किसी बात से इस नियम में व्याघात नहीं पड़ सकता था। ज्यों-ज्यों उसका शरीर क्षीण होने लगा; उसकी निष्ठा और पूजा बढ़ने लगी। आखिर जब मैं M. B., B. S. final में पहुँचा, उसका शरीर जर्जर मात्र रह गया। कई दफ़े समझाया—'सर्दी खाजाओगी, निमोनिया हो जायगा।' परन्तु उसने कभी न माना।

मैं परीक्षा की तैयारी के लिये तीन बजे सुबह उठकर पढ़ाई करता था परन्तु वह उससे पहले ही गायब होजाती। पाँच बजे सुबह जब मैं रजाई में छिपकर रोशनी के सामने ठिठुर-ठिठुर कर पढ़ाई कर रहा होता, वह एक पतली ऊनी चादर ओढ़े, हरिनाम ज १ जा कर रावी से लौटती।

मैं कहता—'माँ इस तरह तू मर जायगी।'।

वह हँस कर जवाब देती—'बच्चा तेरे मुँह में घी शक्कर, रामजी मुझे समेट ले और मुझे क्या चाहिए; बस एक तेरी बहू का मुँह देखना बाक़ी है।'।

आखिर एक दिन वही हुआ, जिसकी मुझे आशंका थी। उसका शरीर अस्वस्थ था। मैंने कहा—'एक दिन तेरे जल के बिना महादेव जी प्यासे न मर जायँगे।' पर वह मेरे सोकर उठने के पहले ही नदी स्नान के लिए जा चुकी थी।

मैंने परीक्षा कर देखा, डबल निमोनिया हो गया था परन्तु खैरियत इतनी थी कि साथ ज्वर भी था । चेतन-अर्धचेतन अवस्था में वह केवल हरिनाम जप रही थी । कभी कहती—‘.....को कह दो अबके बैसाख में लड़के का व्याह ज़रूर कर दूँगी । अब मेरे शरीर का क्या भरोसा ; विरधावस्था का पका फल है ।’

डाक्टर सोंधी के परामर्श से मैंने नुसखा तैयार किया और शुश्रूषा के लिए हर समय समीप बैठा रहने लगा । वह मुझे कॉलिज जाने के लिए विवश करती, कहती—‘तेरा डाक्टरी का इम्तिहान है तू कॉलिज जा ।’

अवकाश लेने कॉलिज गया था । मुझे घबराया देख कर्नल रौबर्ट ने पूछा—‘What is wrong with you my boy? बेटा तुम्हें क्या हुआ ?’

मैंने रुँधे हुए गले से उत्तर दिया—‘मेरी माँ की अवस्था नाजुक है,’ मेरी आँखें भीग आईं ।

सर्जरी (शल्यक्रिया) में मेरा हाथ साफ़ होने से प्रिंसिपल कर्नल रौबर्ट मुझ पर बहुत प्रसन्न रहते थे । करुणा से उन्होंने कहा—‘पागल हुए हो, घबराओ नहीं, मैं तुम्हारी माँ को देखने आऊँगा ।’

तीसरे पहर वे आये । प्रायः बीस मिनट तक उन्होंने माँ को देखा । कुछ तदवीर उन्होंने न बताई । बताने को कुछ था भी नहीं । उन्होंने कहा—‘तुम तो खुद डाक्टर हो, सब कुछ समझते हो ।’

माँ मर गई । मैं पाँच दिन तक घर से बाहर नहीं निकला । लोग मुझे समझाने आ बैठते परन्तु मुझे किसी का समझाना असह्यसा लगता था । मेरा संसार उस दिन समाप्त हो गया । मालूम हुआ, जिस डोर से मेरे जीवन की पतंग चढ़ रही थी, वह सहसा कट गई । मैं अतल अधर में गिरा जा रहा हूँ—जैसे वैलून से हवा निकल गई हो । संसार और जीवन मेरे लिए समाप्त हो गये ।

परीक्षा देने का मेरा विचार नहीं था । प्रिंसिपल साहिब के अनुरोध

से परीक्षा देनी ही पड़ी। पास कैसे हो गया, इसे भी वे ही जानें। उन्हें आशा थी, मैं सर्व प्रथम रहूँगा पर वैसा न हुआ, सम्भव भी न था।

एक दिन उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—‘देखो परीक्षा में उपेक्षा से काम लेकर तुमने अच्छा नहीं किया। अब तुम्हारा कप्तान की commission में आना कठिन है परन्तु कर्नल रोज़-हिल मेरे मित्र हैं, उन्होंने तुम्हें पालमपुर में हस्पताल का इंचार्ज बनाना स्वीकार कर लिया है। यदि तुम मन लगाकर काम करोगे तो उन्नति का मौका रहेगा।

कहा—‘नौकरी मैं नहीं करूँगा।’

प्रिसिपल साहिब जानते थे, मैं बहुत गरीब हूँ। डाक्टरी की प्रैक्टिस चलाने लायक सरंजाम मुझसे होना कठिन है। विस्मय से उन्होंने कहा—‘नौकरी नहीं करोगे ? पागल हुए हो क्या ? और समझाया—पालमपुर काँगड़े की उपत्यका में मनोरम स्थान है। वहाँ स्वास्थ्य तो सुधरेगा ही, मन भी बहल जायगा।’

नितान्त अनिच्छा से मैं पालमपुर गया। हस्पताल के कम्पाउण्डर के अतिरिक्त कोई भी मुझसे प्रसन्न न था। मैं कुछ भी न करता, न देखता। पालमपुर का हस्पताल नया ही था। पहाड़ी लोग प्रायः भीरु और वहमी होते हैं। वे यूँ भी बहुत कम आते थे। तहसीलदार, थानेदार कभी-कभी मुझसे नुसखे लिखा लिया करते वरन् कम्पाउण्डर ही मालिक था।

मैं प्रायः बरामदे में बा बाहिर घास पर डेकचेयर डाले बैठा देवदार और चीड़ के घने जंगलों से छाये पहाड़ों को या हिमावृत्त पर्वत-शिखरों की ओर देखा करता। मुझे मालूम होता—उन श्वेत पर्वत-शिखरों में श्वेत चादर ओढ़े मेरी माँ बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही है। दूर से मुर्गे की दर्द भरी बाँग सुनकर मेरा ध्यान टूट जाता।

हस्पताल के नीचें-घाटी के उस पार ढलवानों पर चाय के बगीचे हैं। इनमें पत्तियाँ चुनती पहाड़ी स्त्रियों के झुण्ड भेड़ों के समान दिखाई

देते । कभी उधर की वायु के झोंके के साथ उनके सम्मिलित राग की अस्पष्ट, कम्पित-सी लहरी भी सुनाई पड़ जाती ।

लोग कहते हैं—पालमपुर नन्दन कानन है । सर मालकम-हेली तो पालमपुर पर इतने रींके कि शिमले की जगह इसे ही गरमियों के लिये पंजाब की राजधानी बना देना चाहते थे परन्तु मुझे यह सब बिलकुल नीरस जान पड़ता था ।

नीचे घाटी की तलैटी में खरकी झाड़ियों में से बल खाती, कल-कल करती पानी की एक धारा बहती है । इस पानी को रोक कर जहाँ तहाँ पहाड़ी लोगों ने पनचकियाँ बना ली हैं । वहाँ जगह-जगह बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हैं । घाटों में इन्हीं चट्टानों पर बैठ कर निरुद्देश्य समय गुजार देता ।

एक रोज़ तीसरे पहर यों ही एक चट्टान पर बैठा एक बगले के भक्त-रूप को देख रहा था । एक गूजर की लड़की, बारह-तेरह बरस की, अपनी भैंस को धार पर पानी पिलाने आई । भैंस की चौड़ी पीठ पर वह अपने डेढ़ बरस के भाई को साधे थी । छोकरा गूजरों का कनटोप ओढ़े मजे में 'तत-तत' कर एक पतली-सी छड़ी से अपनी सवारी को हाँके चला आ रहा था । पानी के किनारे पहुँच गर्दन झुकाकर ज्योंही भैंस जल्दी से आगे बढ़ी, बच्चा कद्दू सा लुढ़क कर नीचे आ गिरा ।

लड़की ने घबरा कर बच्चे को उठाया परन्तु उसके सिर से खून बहता देख वह स्वयं भी चिल्लाकर रोने लगी । बच्चा सहम गया था परन्तु बहिन का रोना देख उसने भी मुँह पसार दिया ।

बच्चे की चोट को हाथ से दबा लड़की ने खून रोकना चाहा परन्तु वह न रुका । यह देख मैं उठा । लड़की के हाथ से बच्चे को ले अपना रुमाल पानी में भिगो-धाव पर दबा दिया । सिर की खाल प्रायः डेढ़ इंच फट गई थी ।

बच्चे को अपने ही हाथों में लिए मैं हस्पताल लौटा । लड़की पीछे-

पीछे भागी चली आई । स्वयं बच्चे की मर्हम पट्टी की । वह भाग-भाग कर अपनी बहिन के पास जाना चाहता था, यह देख हँसी आ गई । पट्टी बाँध अपने ही हाथों उसका मुँह धो दिया । नाक के मैल की न जाने कितनी तहें उसके गालों पर जम रही थीं । उसके मैले कुचैले कपड़े फाड़, चिर्मची में बैठा मैंने उसे साबुन से नहलाया । उसका भूरा धब्बेदार बदन खूब गोरा-गुलाबी निकल आया । जब तौलिये से उसका शरीर पोछ रहा था वह मेरे हाथों में ही सो गया । वह छोकरी अपनी बड़ी-बड़ी कातर आँखों से निरन्तर मेरी ओर देखती रही ।

उस सुन्दर सुडौल बच्चे के प्रति मन में एक प्रकार का मोह या ममता-सी पैदा हो गई । उसे तौलिये में लपेट मेज़ पर सुला मैंने लड़की की ओर देखकर कहा—‘बैठ जाओ ।’

लड़की की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े । उसे भयभीत होते देख समीप बुला उसका नाम पूछा । गले में रुके हुए आँसू पी इसने कहा—‘नूरी’ ।

नूरी के मैले शरीर और कपड़ों की ओर संकेत कर कहा—‘नूरी तू बहुत मैल

वह इसका कुछ अर्थ न समझ अपनी कातर आँखों से मेरी ओर देखती रही । उससे फिर पूछा—‘नूरी तू कभी नहाती है ?’

सिर हिलाकर उसने उत्तर दिया—‘नहीं ।’

पूछा—‘क्यों ?’

उसने कहा—‘जाड़ा लगता है ।’

उससे बातचीत करता रहा—उसके यहाँ कितनी भैंसें हैं ? कितना दूध होता है ? इत्यादि-इत्यादि । बहुत शनैः-शनैः वह मेरी बातों का उत्तर देती थी ।

कुछ देर में बच्चे ने आँखें खोल गिरगिट की तरह सिर उठा दिया । नूरी ने भट से मेज़ के पास पहुँच, बच्चे को उठा लिया और अधीरता से उसे चुमकारने लगी ।

हाथ फैला मैंने बच्चे को पुचकारा पर उसने मुँह फेर लिया ।

मोह ठोकर खाकर जाग उठता है ! उन बच्चों को अपने सामने से चले जाने देने की इच्छा न होती थी । इच्छा हुई, उन्हें कुछ खाने को दूँ । पर वहाँ क्या रखा था ? एक कागज़ में चीनी डाल, मेज पर रख बच्चे के विरोध के बावजूद उसे बहिन की गोद से ले मेज पर बिठा दिया । वह मुँह फाड़ चिल्लाने लगा । एक चुटकी चीनी उसके खुले मुँह में डाल दी । मुँह में लार भर आने से उसके लिए रोना मुश्किल हो गया । आँसू भरी आँखों से वह चीनी खाने लगा । मैंने नूरी को भी चीनी दी । वह बड़ी व्यस्तता से उँगलियाँ चाट-चाट चीनी खाने लगी । आखिर लड़की को, दूसरे रोज़ दवाई के लिए फिर बच्चे को लाने के लिये कह, मैंने उन्हें विदा किया ।

वह दिन और दिनों से भिन्न था । उस दिन मन में उदासी और शरीर में शिथिलता अनुभव न हुई । बराण्डे में टहलता रहा, बाज़ार भी गया । कुछ मिठाई और फल भी खरीद लाया । दूसरे दिन कई मरीजों को मैंने स्वयं दवाई दी और नूरी और बच्चे की प्रतीक्षा करता रहा ।

लगभग दस बजे नूरी अपने बाप के साथ बच्चे को लेकर आई । बच्चा अपने बाप के कंधे पर सवार, एक पतली छड़ी से अपनी सवारी को हाँकता चला आ रहा था । नूरी के सिर पर दूध की एक मटकी थी ।

नूरी के बाप ने बड़ी दीनता से सलाम किया और पीर से मेरे जान-माल के खैर की दुआ माँगी । मैंने बच्चे को पुचकारा परन्तु उसने डर कर बाप की गोद में सिर छिपा लिया ।

बाप ने बच्चे की पीठ पर स्नेह से हाथ फेरकर कहा—‘बेटा मम्दू, डाक्टर साहब को सलाम करो ।’ मम्दू और भी मचलकर बाप के गले से लिपट गया ।

मेज़ के दराज़ से एक लाल सेव निकाल मैंने मम्दू को

दिखाया । सेव देख मम्दू दुविधा में पड़ गया । उसने मेरी ओर देखा, फिर बाप की ओर देखा, और फिर और शंकित चित्त से शनै-शनैः मेरी गोद में आ गया । मम्दू का डूँसिंग (मरहम पट्टी) खुद ही किया । उसका रोना और टुनकना मुझे बहुत भला लगा । बाज़ार से लाई मिठाई बच्चों को दी । घण्टे भर बाद वे लोग चले गये । गूजर को मैं प्रायः साबुन देता रहता । बच्चे भी मिठाई के लोभ से नहाना स्वीकार कर लेते ।

नूरी और मम्दू काफ़ी साफ़ सुथरे नित्य सुबह मेरे लिये दूध का बर्तन लेकर आते और शाम को लौटा ले जाते । आहिस्ता-आहिस्ता दूसरे बच्चे भी आने लगे । नित्य तीसरे पहर प्रायः आठ-दस बच्चे मुझे घेर लेते । चाँय-चाँय, काँय-काँय मच जाती । प्रायः डेढ़-दो घण्टे इसीमें बीत जाते । अब डेक चेयर पर बैठकर शून्य दृष्टि से हिम श्रृंगों को न देखता रहता । नीचे धार पर गये भी कई-कई दिन बीत जाते ।

ईद पर नूरी और मम्दू के लिए कपड़े सिलवाये । नूरी की दुबली-पतली देह काली रेशम के तंग पायेजामे, गुलाबी कुरते, और पीली चुनरिया में फूलों पर मण्डराती तितली जैसी जान पड़ती । मम्दू रंगीन फुटबाल सा लुढ़कता फिरता । दूर से ही उन्हें आते देख मैं हाथ फैला देता । नूरी दौड़कर मेरी बाहों में आ जाती और मम्दू घुटनों से चिपट कर उछलने लगता । कभी-कभी नूरी घर से मिट्टी के प्याले में खीर ले आती और मुझे उसे खाने के लिए विवश करती ।

नूरी को मैं 'नूरी बिट्टी' कह कर पुकारता था । उसकी बात मैं टाल न पाता । मम्दू बुद्धू था और शैतान भी । कभी यह तोड़ता कभी वह फोड़ता परन्तु नूरी अपने भोलेपन में चिंता और करुणा का पुट लिए रहती । मैं झूठमूठ आँखें बन्द कर लेता । नूरी पूछती—
'क्या हुआ ?'

मैं कह देता—'सिर दुखता है ।'

वह आकुलता से अपने हाथों मेरा सिर दबाने लगती। मैं हँस पड़ता। वह भेंप कर आँखें मूँद लेती। मैं उसका सिर चूम लेता।

मम्दू मिठाई लेकर चम्पत हो जाता परन्तु नूरी घण्टों मेरी कुर्सी के पास बैठी रहती। कभी घास के तिनके ले खिलौने की टोकरियाँ बनाती, कभी अपनी गुड़िया सजाती, कभी मुझे पहाड़ी गीत सुनाती। वह पहाड़ी गीत, “गोरियेदा मन लगया चम्बेदिया धारा.....” उसे खूब याद था। वह एक बरस कैसे गुजर गया, कुछ मालूम न हुआ।

एक दिन तीसरे पहर गूजर आ मेरी कुर्सी के समीप जमीन पर बैठ गया। भूमिका बाँध उसने कहा—‘गिराली’ ग्राम में वह अपनी एक भैंस का सौदा करने गया था। महीने भर में नूरी का ब्याह उसे कर देना है। उसीके खर्च के लिए वह भैंस बेचने को मजबूर हुआ है।

मैंने गूजर से कहा—‘नूरी तो अभी बची है, उसके ब्याह की इतनी जल्दी क्या ?

गूजर ने कहा—“समधी तो नहीं मानता। बरस भर हुआ उसकी गूजरी बुखार से मर गई। घर में काम काज के लिए कोई औरत नहीं, वह कैसे मानेगा ? सगाई हुए तीन बरस भी तो हो गये।

ब्याह के खर्च की बात चली। गूजर ने बताया बिरादरी को दो भात देने ही होंगे—एक मीठा और एक नमकीन। पीर दरया की दरगाह पर चादर भी चढ़ानी ही होगी। लड़की के लिए दो एक चीज़ चाँदी की घड़ाना ज़रूरी है। साठ सत्तर से कम खर्च नहीं होगा।

मन में सोचा, हमारी नूरी का ब्याह है। एक प्रकार की उमंग सी अनुभव हुई। नूरी दूर चली जायगी, इस खयाल से कुछ दुख भी हुआ। भैंस बेचने के लिए गूजर को मना कर दिया। उस मास का बेतन तहसील से मुझे दो ही चार दिन पहिले मिला था। सौ रुपये लांकर गूजर को गिन दिये और कहा—‘नूरी जैसी तुम्हारी बेटी वैसी

हमारी, ब्याह खूब धूमधाम से हो। अच्छे गहने कपड़े बनवाना, गूजर पागल की तरह मेरे पैरों से लिपट गया, उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया।

नूरी के लिए और उसके दूल्हे के लिए एक-एक जोड़ा कपड़े मैंने खुद भी बनवा दिये। ब्याह से कुछ दिन पहिले नूरी आकर मेरी कुर्सी से पीठ सटाकर बैठ जाती। मैं अपना हाथ उसके सिर पर रख देता।

गोरखा चौकीदार की स्त्री से नूरी ने अपनी तमाम बुद्धि व्यय कर मोजा बुनना सीखा था। देंसी ऊन का एक जोड़ा खूब मोटा मोजा उसने अपने हाथ से कई दिन में बुनकर तैयार किया और अपने ही हाथों उसे मेरे पैरों में पहना, उसने अभिमान और सन्तोष से मेरी ओर देखा। गदगद हो उसे गोद में उठा मैंने चूम लिया।

मैंने कहा—‘नूरी अब तू सुसराल चली जायगी फिर मैं तुझे कैसे प्यार करूँगा?’

नूरी ने अपना सिर मेरी छाती पर झुका दिया। जब मेरी कमीज़ भीग गई तो मैंने उसका सिर उठा कर देखा—वह रो रही थी।

हँसकर कहा—‘अरे पगली लड़की तू तो रो रही है।’ वह लजा कर भाग गई।

नूरी का ब्याह खूब धूमधाम से हुआ, खूब भौंभ-तासे बजे। मैंने घर बैठ कर ही उन्हें सुना। मम्दू को साथ लेकर नूरी की माँ परात भर भात मेरे लिए दे गई।

ब्याह हो गया और नूरी का दूल्हा उसे लेकर चला गया। ब्याह का भँभट समाप्त कर नूरी का बाप सलाम करने आया। उसने कहा—‘तीन दिन बाद नूरी का दूल्हा उसे लौटाने आयगा तो वह लड़की को कम से कम महीना भर घर टिकायेगा।’

तीन दिन उदासी में कटे। मम्दू आता, दो-चार बात तोतली बोली में बोल मिठाई ले चम्पत हो जाता। तीसरे दिन धूप ढलने लगी थी।

बरामदे में बैठा मैं ट्रिब्यून के पृष्ठ पलट रहा था। दूर से मम्दू चीखता हुआ सुनाई दिया—‘लूरी आई, बेबे आई, लूरी आई, बेबे आई।’

बाहिर निकल मैंने देखा, नूरी रंग-विरंगे कपड़े पहने, छमछम करती चली आ रही है और उसके पीछे मम्दू भी लुढ़कता हुआ चला आ रहा है। जेमे बड़ड़े को देख गाय रंभा कर दौड़ती है, वैसे ही मैं भी उसकी ओर दौड़ा। उसे अपनी बांहों में भर लिया। दो घंटे तक नूरी मुझे अपने सुसराल की बात सुनाती रही फिर मम्दू को लेकर चली गई। मैंने कहा—‘कल सुबह ही आना। उसने सिर झुका कर कहा—‘हाँ’ !

दूसरे दिन सुबह गूजर की चीख पुकार से मेरी नींद खुली। मैंने पूछा—‘हुआ क्या?’

दोनों हाथों से सर पीट वह धम से फर्श पर गिर पड़ा—‘मैं बरबाद हो गया, डाक्टर साहब, बचाओ!’—उसने रोकर कहा।

आशंका से मेरा हृदय धबरा उठा। मेरे फिर पूछने पर उसने बताया—‘कल नूरी यहाँ आई थी, इस बात से उसका दूल्हा नाराज़ होगया। रात में हँसिये से उसने नूरी की नाक काट ली’।

एक दफ़े अपने कानों का विश्वास न कर मैं बिस्तर से उछल पड़ा। गूजर के दोबारा वही बात दोहराने पर ताबड़तोड़ सर्जरी का बेग ले मैं गूजर के घर पर पहुँचा। सब लोग रो रहे थे। दूल्हा भाग गया था।

नूरी की खटिया के तमाम कपड़े लहू से तर थे। वह बेसुध पड़ी थी। मैंने उसकी नाड़ी देखी, हृदय की गति देखी, मालूम न हो सका कि अभी जीवन शेष है या नहीं। तुरंत सीने पर सुई लगादी और फिर ध्यान से जीवन के चिन्ह देखने लगा। कोई चिन्ह न था।

मैं मूकभाव से नूरी के शव को देखता रहा। फिर घर लौट लेट रहा।

कम्पाउण्डर ने आकर कहा—‘तहसीलदार साहिब याद फर्माते हैं । हाथ हिलाकर उसे बाहिर चले जाने का इशारा कर दिया । नौकर आता और भाँक कर चला जाता । तीसरे पहर आकर बच्चों ने हस्व-मामूल शोर मचाया, पर मुझसे उठा न गया । पाँच दिन तक यही हालत रही । छठे दिन बिस्तर बाँध मैं लाहौर लौट आया ।

तुम कहते हो—‘मैं मौत को बुला रहा हूँ । मैं कहता हूँ, मौत आती कहाँ है ? वह मुझसे नफ़रत करती है !’

×

×

×

डा० प्रताप की इच्छा न होने पर भी मैंने उसे हृदय रोग विशेषज्ञ डा० सूरी को दिखाया । पर उसने कोई दवाई न ली । इसी से कहता हूँ, प्रताप से मृत्यु हार गई थी, यमराज परास्त हो गये थे क्योंकि उसे इनका भय न था । हाँ, उपनिषदों में ज़रूर इस उपाय का उपदेश नहीं है ।

मृत्यु के पश्चात् उसके तकिये के नीचे से अनघड़ हाथों का बुना एक जोड़ा ऊनी मोजा निकला । प्रताप की स्मृति में यह जोड़ा रख लेने की इच्छा हुई, लेकिन कुछ सोच कर, चिता में उसके सिर के नीचे वह जोड़ा भी रख देना उचित समझा ।



शत !

पूसका महीना, बादल धिरी साँझ, रिसरिसकर पानी बरस रहा था, खूब जाड़ा था। ऐसे समय कोई आदमी घर छोड़कर मेरे यहाँ आयगा, ऐसी आशा न थी। एक बंगाली उपन्यास-निरूपमा देवीका लिये अंगीठी के सामने आराम कुर्सी पर बैठ, सामने दूसरी कुर्सी पर पैर टिकाये, पढ़ रहा था। घने बादलों के कारण अंधेरा हो जाने से सरे शाम से ही बिजली जल रही थी।

मैं उपन्यास में तन्मय था। कमरे में कोई कब घुस आया, यह मुझे जान नहीं पड़ा। परन्तु जब पैरों के नीचे से कुर्सी खींच लिये जाने पर पैर धम से नीचे जा गिरे, किताब से नज़र उठा कर देखा कि सामने की कुर्सी पर सन्तू बैठा है।

सन्तू का मेरे यहाँ आने का कोई समय असमय नहीं। लेकिन इस जाड़े के मेह में और फिर बुलाये चुलाये बिना उसका यों धम से कुर्सी पर गिर पड़ना !

मैं चुपचाप पलभर उसकी ओर देखता रहा। सन्तू की नज़र अंगीठी की तरफ थी। हाथ के सिगरेट से एक खूब लम्बा कश खींचकर उसने सिगरेट के टुकड़े को अंगीठी में फेंक दिया। उसकी दृष्टि अब भी उसी ओर थी। सिगरेट के उस टुकड़े से धुआँ उठा, लौ उठी और वह समाप्त हो गया। अन्त में मुझे ही वह चुप्पी तोड़नी पड़ी। उसे सचेत करने के लिए मैंने पूछा—“क्यों ?”

जब से रूमाल निकाल मुख और बालों पर पड़ी मेह की बूँदे पोंछते हुए उसने दीर्घ उसास लेकर कहा—“हूँ”—और फिर गुम हो रहा।

उत्सुकता से मैंने पूछा—“क्यों, क्या बात है ?”

बेचैनी से पैर पटक मेरी ओर देखकर उसने खिन्न स्वर में कहा—
“क्या यार, दुनिया का कुछ पता नहीं ।”

हाथ की किताब मँदते हुए मैंने फिर दुहराया—“क्यों, क्या बात है ?”

“हूँ,”—कह और भी अधिक एक लम्बी साँस उसने खाँची और खिन्नता से मुस्कराने की चेष्टा कर मुँह फेर लिया ।

अवश्य ही कोई असाधारण घटना घट गई है, जिसे मुख तक लाने में सन्तू एक आरम्भ की खोज में है—मैंने सोचा । इसलिए फिर सहारा दिया—“सीधे घर से ही आ रहे हो क्या ?”

इन्कार से सिर हिलाते हुए उसने कहा—“क्या बताऊँ.....इन औरतो का कुछ विश्वास नहीं !”

औरतो का नाम सुनते ही मेरा कौतूहल विशेष जग उठा । ज़रा बनकर मैंने कहा—“रवीन्द्रनाथ ने भी तो कहा है, स्त्री के मन का भेद त्रिलोक में कोई नहीं भाँप सकता ।”

सन्तू झूटते ही बोला—“बिलकुल ठीक । मैं तो पहले से जानता था और तुझसे छिपा नहीं कि मैं लड़कियों से ज्यादा मेल-जोल नहीं रखता । मेरा तो वही उसूल है—दूर-दूर । लेकिन आज तेरे सामने सिद्ध कर दूँगा कि तू जो उस पद्मा को दूध की धुली देवी कहता है,.... आज मैं सब जान गया हूँ । स्वयं आँखों से देख आया हूँ और एला-निया कहता हूँ.....मैंने पहले भी कई दफ़े तुझसे कह दिया है, वह बड़ी छत्तीसी है, उसकी जड़ें पाताल में हैं ; लेकिन तू नहीं मानता था ।”

मुझे याद नहीं, कभी सन्तू ने यह सब इतने ज़ोर से कहा हो परन्तु उसकी बात को मैंने काटा नहीं । वह कहता गया—“यह जितनी चिकनी चुपड़ी देवियाँ बनी रहती हैं, इन सबके पोल हैं और मैं साबित कर सकता हूँ ।”

“क्या हुआ ?”—मैंने व्यग्रता से फिर पूछा ।

सन्तू उसी स्वर में कहने लगा—“मैं पहले ही कहता था, नारायण जो मदन के घर में यों आता-जाता है, उसे देखते ही जो पद्मा उछल कर बाहर आ फुदकने लगती है, उसका कुछ मतलब है । यह हाथ मिलाना मेरी समझ में नहीं आता ! हाथ मिलाने की क्या ज़रूरत ? मुझसे भी हाथ मिलाने लगती है वह.....निर्लज्जता की भी एक हद होनी चाहिए । मैं तो दूर से ही हाथ जोड़ देता हूँ । नारायण प्रायः हर रोज़ मदन के यहाँ जाता है और ऐसे समय, जब मदन घर पर न हो ।

हम तो ऐसे समय नहीं जाते परन्तु उसे वहाँ सदा ऐसे ही समय देखता हूँ । कोई मर्द उसके घर आये, वह कूद कूदकर उसके आगे-पीछे नाचने लगेगी, बिल्कुल कुतियों की तरह ।”

सन्तू का क्रोध और ग्लानि देखकर मुझे निश्चय हो गया कि आज अवश्य ही कुछ अघट घटना हो गई है । सन्तू ने साँस लेकर फिर कहना आरम्भ किया—“मैं कहता हूँ, इस बनाव-सिंंगार आर टीम-टाम की ज़रूरत ही क्या ? यह फँसाने की चालें नहीं तो क्या हैं ? इसीलिये मैं उससे कभी बोलता नहीं । दूर ही से हाथ जोड़कर कह देता हूँ—‘देवी तू दूर ही रह ।’

लेकिन उसे तो चाऊँ माऊँ करने की आदत है । वह समझती है, सभी एक जैसे हैं । पर यहाँ क्या रखा है ? नारायण तो मैं हूँ नहीं जो ‘पार्कर’ का कलम ला दूँ, दिवाली के दिन चाकलेटों के डिब्बे भेंट करूँ ; नरगिस के फूलों के गुलदस्ते, रेशमी रुमाल और उपन्यास ला दूँ । यहाँ एक पैसे के दिवाल नहीं । मैं जाता हूँ मदन से मिलने और वह समझती है कि मैं उसके लिए आया हूँ ।

“मैं अभी इधर आते-आते रास्ते में मदन से मिलने गया था । मदन था नहीं, मैं लौटने लगा । भट्ट सामने आ खड़ी हुई । कहने लगी—‘आइए बैठिए, मदन भाई अभी आ जायेंगे ।’

“मुझे बेवस बैठना पड़ा । लगी उल्लू की तरह भप-भप मेरा मुँह ताकने । मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ । ऐसे ही पूछा—‘आप क्या कर रही थीं ।’

“जवाब मिला—‘ऐसे ही एक किताब देख रही थी ।’ पूछा—‘कौनसी किताब ?’ आँखें मटकाकर बोली—‘ऐसे ही एक कविता की पुस्तक थी ।’

“यह तो मैं ताड़ गया कि पुस्तक जरूर नारायण का उपहार है परन्तु ऐसे ही बनकर मैंने कहा—‘अच्छा दिखाओ कौन-सी पुस्तक है ?’

“लगी ढालने । आखिर भीतर गई । चुड़ैल ने क्या किया, कविता की वह पुस्तक ‘तार’, जो एक दफ़े मदन का मन रखने के लिए मैंने उसे भेंट कर दी थी, उठा लाई । मैं भला इस छलछन्द में आनेवाला हूँ ? मैंने पुस्तक देखने के लिए माँगी तो इधर-उधर करने लगी । एक ही कुट्टनी है । लगी हाव-भाव दिखाने पर इस बालू में तेल कहाँ ?”

“जब वह पुस्तक छिपाने लगी, तो मैं भी भौंप गया कि जरूर ढाल में कुछ काला है ।

मैंने फिर पुस्तक माँगी । कहने लगी—‘क्या कीजियेगा, आप ही की तो है ।’

मैंने कहा—‘एक कविता दिखाऊंगा ।’

उसने पुस्तक में से पासपोर्ट साइज़ का एक फोटो निकाल कर छिपा लिया और किताब मेरे हाथ में दे दी ।

मैं अन्धा तो हूँ नहीं । बात की हद तक पहुँचाने के लिए मैंने कहा—“ज़रा वह फोटो तो दिखाइये । फोटो भला कैसे दिखाती ; सब भेद खुल न जाता ? शर्त बदता हूँ फोटो नारायण का है । यदि मदन का होता, छिपाने की क्या जरूरत थी ?

“मैंने हाथ बढ़ाकर फोटो ले लेना चाहा । वह लगी इधर-उधर मटकने । कभी पीठ के पीछे छिपाती, कभी इधर, कभी उधर । मैंने

सहज भाव से हाथ पकड़ने की कोशिश की परन्तु वह तो चाहती थी हाथा पाई करना.....और यह अपने बस का नहीं। इतने में नारायण ने पुकारा मैं जान लुझा कर भागा।

“यह मैं दावे से कह सकता हूँ कि वह फोटो नारायण का था। उपहार के बाद फोटो की नौबत पहुँची है और अब उसे छिपाने की भी ज़रूरत पड़ने लगा। कभी देखा नहीं, कैसे बढ़-बढ़कर हाथ मिलाती है ?”

इतना कहकर सन्तू फिर अंगीठी के कोयलों की ओर देखने लगा। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। दर असल उसे इतना क्रोध ही था या अंगीठी की भलक से वैसा मालूम पड़ रहा था, यह निश्चय नहीं कह सकता। मैंने कुर्सी पर करवट बदलते हुए कहा—“तो फोटो दिखाया नहीं।”

उसने तिनक कर कहा—“फोटो नारायण का है। मैं इस बात पर जो शर्त चाहो, बदने को तैयार हूँ अगर इस बात का भण्डाफोड़ मैंने न कर दिया तो मेरा नाम सन्तकुमार नहीं। मैं कहता हूँ—“आदमी ब्याह करले, भगड़ा खतम हुआ। बाहर और, भीतर और—यह कुल्टाओं की-सी चालें क्यों ? यह सबजाल नारायण के रुपये के लिए हैं।”

बात मेरी समझ में आ गई। मैंने कहा—“नारायण रुपये वाला है, इसमें शक नहीं। देखने-सुनने में भी अच्छा है। उसे कौन लड़की नहीं चाहेगी।”

सन्तू तड़प कर बोला—“कुछ नहीं, सब रुपये का लोभ है। मैं सब जानता हूँ। और देखना, मैं सब दिखा दूँगा।”

कुछ देर लड़कियों के अत्याचार की विवेचनाकर, कुँवारों की दयनीय दशा के प्रति हम लोग लुब्ध रहे। उसके बाद मैंने कहा—“यार सन्तू, तू चालाक तो बहुत है ; परन्तु एक काम करे तो जानूँ।”

तिछ्ठीं नज़र से मेरी ओर देखकर उसने कहा—“क्या ?”

“वह फोटो अगर तू निकाल लाये तब बहादुरी है !”

इस बात का सीधा कोई उत्तर न दे सन्तू ने कहा—“मैं शर्त बदकर कहता हूँ, वह फोटो नारायण का है और रुपये के लिए ही वह नारायण पर फन्दा डाल रही है। परन्तु ऐसी लड़की से……लेकिन नारायण भी गधा है। वह बिलकुल अन्धों की तरह उसके गोरे चमड़े पर मर रहा है।”

“सो तो है”—मैंने कहा—परन्तु बिना प्रमाण के मज़ा नहीं। रगे हाथों ले, तब बात है।”

आखिर यह जाल रचा गया—सन्तू पद्मा के यहाँ रोज़ न सही, दूसरे-तीसरे जाता ही है। वहाँ उसे घर के आदमी की तरह पूरी स्वतंत्रता है। सन्तू कल उनके यहाँ जाकर अपनी एक पुस्तक भूल आये और फिर ऐसे समय जब मदन और पद्मा दोनों में से कोई घर पर न हो, वहाँ जाकर मदन की माँ या अन्य किसी व्यक्ति से कहकर अपनी पुस्तक लेने के बहाने पद्मा की पुस्तकों की आलमारी से वह पुस्तक ‘तारे’—जिसमें नारायण का फोटो पद्मा ने छिपाकर रखा है—उठा लाये। इसके पश्चात् फिर देखा जायगा।

जोड़-तोड़ लगाकर देखने से जान पड़ा कि ऐसा स्वर्ण सुयोग सन्तू को बुधवार तीसरे पहर से पहले नहीं लग सकता। उस समय पद्मा का ‘स्त्री-बुध सभा’ में जाना निश्चय था और मदन कैमिस्ट्री क्लास छोड़ नहीं सकता था।

×

×

×

मैं प्रतीक्षा में बैठा था। सन्तू की बाईसिकिल की घंटी का शब्द सुनाई दिया। उचक कर देखा—मकान की कुर्सी की सीढ़ी पर एक पाँव रख, ब्रेक दबा, बाईसिकिल को भट से रोका और उसे गिरता-पड़ता छोड़ सन्तू भीतर कूद आया।

उसके हाथ में दो पुस्तकें थीं—एक मोटी और दूसरी पतली-सी।

उसके चेहरे पर विजय-गौरव झलक रहा था । उत्सुकता से उसकी ओर देखकर मैंने पूछा —“क्यों ?”

वह सपाटे से साइकिल दौड़ाकर आया था, हँपता हुआ बोला—
“किताबें दोनों आलमारी से लेकर हटा ली थीं कि अचानक मदन आ पहुँचा । बड़ी कठिनता से बात बनाकर निकल पाया । अभी किताबें खोली भी कहाँ हैं ।”

यह कहकर हरे रंग की मोटो-सी पुस्तक उसने फर्श पर डाल दी और कुर्सी पर बैठते हुए उस पतली-सी पुस्तक को दोनों हाथों में लेकर बोला—“अभी सब भेद खुला जाता है ।”

पुस्तक को खोलते ही वह फोटोवाला पन्ना स्वयं खुल गया । मैं अत्यन्त कौतूहल से मुँह बाये उसकी ओर देख रहा था ।

सन्तू उस तस्वीर को देखता रहा, मुँह से कुछ बोला नहीं । उसके मुख का भाव बदलता देख, उच्चककर ज्यो ही मैंने फोटो पर नज़र डालना चाहा—

आश्चर्य ! सन्तू ने तस्वीर को छिपा लिया ।

मैं हैरान था.....

सन्तू की आँखों में सब-कुछ बदल गया, कनपटियाँ लाल हो गईं, माथे पर पसीना झलकने लगा । आग्रह से कहा—“दिखा यार, छिपाता क्यों है ?”

उद्वेग से टूटे स्वर में सन्तू बोला—“किसी से कहना नहीं !”

पुस्तक उसके हाथ से छीन ली । देखा, तो हैरान रह गया । फोटो सन्तू का था । और जिस कविता पर वह रखा हुआ था, उसमें ‘प्यारे, ...तारे, ...हमारे, ...उजियारे,’ कुछ-कुछ ऐसा ही अन्त्यानुप्रास था ।

कृत्रिम क्रोध से ओठ चबा मैंने कहा—“बदमाश !”

भावावेश के कारण सन्तू से कुछ कहते न बना । जब एक प्याली

चाय उसके गले के नीचे उतर गई तब चायदानी की ओर देख उसने कहा—“और जो हो, एक बात कहूँगा—कम-से-कम उसके स्वभाव में बनावट नहीं है।’ उसकी ओर देखकर मैं चुप रह गया। उसने फिर कहा—“और उसकी सादगी देख पूजा करने को मन चाहता है।” मुख की चाय के गरम घूँट को ज्यों-त्यों निगल कर मैंने कहा—“सो तो है ही।”

दूसरी प्याली समाप्त करने के पश्चात् सुस्त हो छत की ओर देख सन्तू बोला—“दरअसल Ther is nothihg good or bad only thinking makes it so.” (अच्छा-बुरा कुछ नहीं, सब समझ का खेल.....।)

तिर्छी नज़र से उसकी ओर देख पूछा—“और वह शर्त ?”

सन्तू ने दाँत निकाल दिये। शर्त जीतने पर वह इतना प्रसन्न होता या नहीं, कहना कठिन है।

तीसरी चिन्ता—

हृदय के लिये सबसे बड़ी व्यथा, शायद जीवन के लिये सबसे बड़ी व्याधि, है शक ! दाँत का उत्कट दर्द, तपेदिक की मर्मांतक पीड़ा और दमे में दमका रुकना, दौरे के रूप में आता है, गुजर जाता है या फिर व्यथा का मूल प्राण ही चले जाते हैं । परन्तु शक और 'अपनी'—के प्रति शक, उसके चाल चलन के सम्बन्ध में इशारेबाज़ी या कानाफूसी, इसे कौन नर-शार्दूल सह सकता है ? शायद सह सकते हैं या तो नर-कुक्कुर या फिर देवता जो आवेश, उन्मेश और अनुभूति में परे हैं । परन्तु देवताओं के सम्बन्ध में पुराणों में ऐसे आख्यान मौजूद हैं जो उन्हें इस नीचता या महत्ता से बरी कर देते हैं ।

माला को जयदेव ने अशेष रूप से आराध्य समझा था । उसकी कल्पना जहाँ तक जा सकती थी, उससे बहुत अधिक दूर तक माला की कमनीयता, सहृदयता और—पुरुष की दृष्टि में स्त्री का चरम सौन्दर्य, अन्यतम गुण-सतीत्व व्यापक था । जयदेव का मस्तिष्क और आत्मा एक निर्विकार आनन्द के जगत में खो गये थे । उस जगत का प्रत्येक रूप या चिन्ह था, माला का मुग्धकर रूप ।

लेकिन यह रंग बहुत दिन ठहर न सका । अब उसका मन घृणा से उद्विग्न और घर से विरक्त था । जासूसी करके सुबूत ढूँढ़ने जाना उसके आत्म-अभिमान के लिये असह्य था । एक युग था जब पुरुष असति नारी और उसके प्रेम-पात्र के रक्त से अपने पौरुष के अपमान का कलंक धो सकते थे, कलंकिनी को कमर तक गड़वाकर कुत्तों से

नुचवा सकते थे । उस समय यही न्याय था, यही मर्यादा थी । समय के साथ न्याय और मर्यादा की धारणा बदल गई ।

स्त्री के प्रति तिरछी नज़र से देखना या उसे धमकाना आज का पुरुष का लक्षण है । रोज़मर्रा की जलन से बचने के लिये अलवच्चा ऐसी स्त्री को अलग कर दिया जा सकता है परन्तु वह सिर दर्द के लिये मूँड़ कटाने का-सा इलाज है । अपनी अयोग्यता अपने अपौरुष का ढिंडोरा पीटना है ।

और फिर वह अपमान भी कैसा ? पति के स्वयं व्यभिचारी होने पर भी भद्र समाज में उसके लिये गुज़ाइश है परन्तु जिसकी स्त्री असति है उसके लिये भद्र समाज क्या समाज के निचले से निचले तबके में भी स्थान नहीं । कोढ़ी से भी अधिक अछूत और भ्रूणघातक से भी अधिक जघन्य वह व्यक्ति है । अपने आपको यों हेय उद्घोषित करने की अपेक्षा, अपने हृत्पिण्ड में स्वयं दाँत गड़ाकर समाप्त हो जाना आसान है ।

भीतर इतना भयंकर ध्वंस और भूकम्प आजाने पर भी जयदेव के जीवन में प्रत्यक्ष अन्तर केवल इतना ही था कि वह अब पहिले की अपेक्षा अधिक चिन्ताशील और चुप जान पड़ता । जिन लोगों के कान तक अपवाद की सुरसुराहट नहीं पहुँची थी, उन लोगों का खयाल था, आयु के बढ़ने और कारोबार के बंधन में फँसने से मनुष्य स्वभावतः गम्भीर हो ही जाता है ।

इसके अतिरिक्त जहाँ तक घर के भीतर का सवाल था, जयदेव और माला में परस्पर आकर्षण का कोई चिन्ह शेष न रहा । प्रेमालाप, सलाह-मशविरा, एक साथ खाना, उठना-बैठना सब समाप्त हो गया । आने-जानेवाले लोगों के सन्मुख वह माला से किसी प्रकार का खिंचाव प्रकट न होने देने के लिये विवश था ।

माला इस सर्दमहरी को उपेक्षा और अन्याय समझती थी । पर उसे सह जाने के अतिरिक्त उपाय न था । यदि किसी दिन जयदेव उस पर

अस्तित्व का अभियोग लगाने का साहस करता तो वह चुप रहकर केवल अपने रक्त से उस कलंक को धो डालती। जयदेव ऐसा साहस कभी कर न सका, कायरता से हो या औचित्य के विचार से हो। घर पर माला मुरझाए हुए बासी गुलाब की सी रहती। दिल के बोझ को हलका करने का केवल एक ही उपाय था, वह सखी सहेलियों में जा दिल बहलाने का यत्न करती।

X

X

X

मई का महीना, नौ तारीख थी। रात प्रायः तीन पहर बीत चुकी थी। जयदेव ऊपर तीसरी मंजिल की छत पर सो रहा था। माला का पलंग नीचे खुले आँगन में मौसी के पास था। समीप एक स्टूल पर बिजली का पंखा रखा था जो बन्द हो गया। गरमी अधिक मालूम होने से मौसी की नींद उचट गई। कुछ अप्रिय गन्ध और चटकने कड़कने का शब्द सुनकर मौसी ने नज़र उठाकर देखा, जीने और दूसरी मंजिल की खिड़कियों से आग की लपटें और धुएँ के बादल उठ रहे थे। बिजली की करंट से आग लग गई थी। मौसी की चीख निकल गई। माला उठ खड़ी हुई। नौकर को पुकारा गया शोर मच गया। लोग इकट्ठे हो गये। पानी की बाल्टियाँ, गागरें और घड़े आग की ओर फेंके जाने लगे।

पुकार सुनकर जयदेव उठ खड़ा हुआ। उसे तुरन्त नीचे आजाने के लिये कहा गया। जीने की कुछ ही सीढ़ियाँ उतरकर वह ऊपर लौट गया। जीने की छत और सीढ़ियों में सब जगह लकड़ी ही लगी होने से जीना बिलकुल ज्वालामय हो रहा था। ऊपर से नीचे उतर आना संभव न था। मकान के दोनों ओर गली, सामने सड़क और पीछे केवल एक मंजिला मकान होने से किसी दूसरे मकान के रास्ते उतर आना भी संभव न था। लम्बी सीढ़ी आस पास कहीं न थी। इस ज़माने में लाहौर जैसे शहर में, जहाँ घर-घर पानी के नल्ल लगे हों, बिना ज़रूरत लम्बी रस्सी भी कोई क्यों रखेगा ?

भय-त्रस्त लोग तमाशा देख रहे थे। भूटपट तीन-चार पगड़ियाँ और साड़ियाँ बाँधकर रस्सियाँ तैयार हो गईं परन्तु रस्सी को तिमंजले की छत तक पहुँचाने का उपाय न था। यदि जीने से ऊपर जाना संभव होता, जयदेव ही नीचे उतर आ सकता था। जवानी के जोश में नौकर पगड़ियों की बनी रस्सी ले कुछ सीढ़ियों चढ़ा—पर लौट आया। दो तीन और नौजवानों ने भी आजमाइश की पर मुँहकी खाकर लौट आये। आग बुझाने के इंजन को टेलीफोन पर टेलीफोन किया जा रहा था। वह अभी तक पहुँच न पाया था।

किसी से कुछ न कह साड़ियाँ जोड़कर बनाई हुई एक रस्सी को ले माला भूटकर जीने की ओर चली। उसे रोकने के लिये लोग आगे बढ़ें, इतने में वह धुएँ के घने बादल में छिप गई।

आशा-निराशा की लहरों पर उतराते हुए लोग मुँह बाये ऊपर की ओर देख रहे थे। किसी ने मुँह से कुछ न कहा पर सभी समझ रहे थे कि एक की बजाय दो जानें गईं। जितनी देर में पहले साहस कर ऊपर जाने वाले लौट आये थे उससे चौगुनी देर होगई, परन्तु माला न लौटी।

बहुत ऊँचे स्वर में अपनी घंटी बजाते हुए फ़ायर-ब्रिगेड आ पहुँचा। फ़ायर-ब्रिगेड ने आते ही अपनी सीढ़ी लगा जयदेव को नीचे उतारा और जल की डबल पिचकारियों से मकान को नहला दिया। आँगन राख कोयले और अधजले लकड़ी के टुकड़ों से भर गया। जीने में एक स्त्री के होने की सूचना के कारण फ़ायर-ब्रिगेड ने और भी जल्दी की परन्तु वहाँ से शरीर के एक जले हुए अंश अतिरिक्त और कुछ न मिला।

×

×

×

अपने जले मकान को छोड़ जयदेव एक पड़ोसी सज्जन के यहाँ ज़रूरी सामान लेकर ठहर गया। माला के अवशिष्ट शारीरिक चिह्नों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करते समय शोक और अभिमान के मिश्रण ने उसे एक नशे की सी हालत में कर दिया। इस युग में माला के यों

सती हो जाने से जयदेव के प्रति लोगों की श्रद्धा और सहानुभूति का ज्वार उमड़ पड़ा। सहानुभूति प्रकट करने वालों का अन्त न था। जिन लोगों ने माला के आचरण के सम्बन्ध में कनखियों से इशारे कर गन्द फैलाया था, वे उन सब बातों को ऐसे भूल गये मानो वह प्रसंग कभी था ही नहीं।

जयदेव के जीवन से शारीरिकरूप में लुप्त हो माला ने उस पर और भी अधिक व्यापक प्रभुत्व पा लिया। वह दिवंगत माला प्रथम प्रणय की माला की अपेक्षा भी कहीं अधिक.....कहीं अधिक.....हो गई। जयदेव को सूझ न पड़ता था, माला के बिना वह किस प्रकार जीवित रह सकेगा ?

उसका हृदय शून्य हो गया था। जो कुछ अनुभूति शेष थी उस से, जिस सम्मान की पात्र माला थी, उसे अपने सिर पर ओढ़ाया जाता देख, लज्जा से उसका मन दबा जा रहा था। अपेक्षा का जो व्यवहार उसने माला के प्रति किया था, उसकी स्मृति से कलेजे को फाड़ डालने की इच्छा होती थी। माला के अभाव में संसार में जीवित रहना उसे घोर विश्वासघात और महापाप मालूम होने लगा। वह अपनी दृष्टि में संसार का सब से नीच और जघन्य व्यक्ति हो रहा था।

मेज पर फ्रेम में माला की एक फोटो खड़ी थी। उसके सम्मुख कुछ कागज़ पड़े थे। जयदेव ने नेत्र मूंद अपना सिर माला के चरणों में रख दिया। कितनी देर तक वह यों बैठा रहा इसको उसे कुछ खबर न थी। उसकी आँखों से बहुत सा जल मेज पर एकत्र हो बिजली के प्रकाश में चमक रहा था, उसी में माला की तस्वीर भी प्रतिबिम्बित हो रही थी। उसे अनुभव हो रहा था, आकाश में बैठी माला उसके आँसुओं को देखकर मुस्करा रही है। उसने सिर उठाया, उसकी पलकों से आँसू टपक रहे थे। उस एकान्त में उन्हें पोंछने की ज़रूरत न थी, उन्हें पोंछा भी नहीं जा सकता था।

रात के साढ़े तीन बज चुके थे पर नींद का कहीं पता न था । शरीर थकावट से चूर था इसलिये वह शरीर को सीधा करने के लिये पलंग की ओर झुका । तीन दिन से उसने अपनी कोई चिढ़ी-पत्री न खोली थी । मकान में आग लग जाने के दिन से चौदह चिढ़ियाँ जमा हो गई थीं । इतने समय में उसे समवेदना के इतने तार मिले और बैठने आने वालों ने उसे इतना अधिक घेर रखा कि चिढ़ियों की ओर ध्यान देने का समय ही न था । लेट कर वह उन लिफाफों को देखने लगा ।

पहिला लिफाफा माला के लिये था—‘श्रीमती मालादेवी, राणा-गली, लाहौर ।’ बाईं ओर कोने में भेजनेवाले का नाम लिखा था—‘लिलि’ ।

आरम्भ में माला और जयदेव को जो पत्र आते थे, दोनों मिलकर साथ-साथ पढ़ते । जयदेव के पत्र माला और माला के पत्र जयदेव ज़रूर पढ़ता । उस समय वे एक प्राण दो शरीर थे । परन्तु बरस भर से वे अदृश्य सीमाओं से बँध अलग-अलग हो चुके थे । जहाँ बात-चीत न हो, वहाँ एक दूसरे के पत्र पढ़ने का सवाल ही क्या ? यदि दूसरे का पत्र हाथ में पड़ जाता तो नौकर के हाथ तुरन्त भिजवा दिया जाता ।

आज माला के अभाव में उसके नाम का पत्र पा जयदेव की आँखों के सामने पिछली बातें फिर गई । आज इस पत्र को बिना पढ़े ही वह किस के पास भेज सकता था ? उसने मोहर देखी । लिफाफा नौ तारीख को हीरामण्डी से पोस्ट किया गया था और दस तारीख सुबह डाकिया मकान जल जाने के बाद उसे दे गया था ।

माला की इस सहेली लिलि को वह क्या उत्तर देगा ? बहुत स्नेहाद्र्भ भाव से उसने लिफाफा खोला । पत्र में लिखा था—

“मेरी मलका ! चुम्बन, कल जैसा दिन दुश्मन की किस्मत में भी न आये । कितने अरमान से मैं नैना के यहाँ गया था और विशाद का

कैसा बोझ लेकर मकान को लौटा । सिवाय नमस्ते और कुशल पूछने के एक शब्द भी तुम से न कह सका । नैना के यहाँ चाय ख़तम कर तुम्हें साथ लेजाकर जरा घूम आने के लिये एक मित्र से कार माँग लाया था परन्तु विभा तुम्हें बरजोरी साथ पकड़कर ले गई । उस समय जो विवश दृष्टि तुमने मेरी ओर डाली, वह अब तक मेरे हृदय में बाण के समान सल रही है । कल तुम अवश्य-अवश्य शाम को पाँच बजे विभा के यहाँ आना, यदि तुम न आओगी तो मुझे तुम्हारे यहाँ आना ही होगा और उसमें कुसूर होगा तुम्हारा—मन्न”

उसका शोक विद्ध हृदय अवसन्न रह गया । इससे किसी हलकी चोट को वह अनुभव ही न कर सकता था । इस चोट ने उसे फिर एक दफ़े विवेक के लायक बना दिया । उसके लिये माला के अपने प्राण दे देने की बात उसके सम्मुख थी और उसके साथ ही अपवाद और अस्तित्व का यह अकाट्य प्रमाण उसके हाथ में मौजूद था ।

“तो क्या मुझे प्राण-पन से प्यार करती हुई भी वह दूसरे के प्रति अनुरक्त थी ? उसने अपने प्राण मेरे लिये प्रेम से नहीं बल्कि सामाजिक कर्तव्य समझ कर दिये ?”—जय का सिर चकरा रहा था ।

इस उधेड़ बुन में उसकी संज्ञा और अनुभूति भावुकता से हट कर विवेक की ओर चली गई । माला की मृत्यु से जीवन को असंभव समझने का भाव उसके मन से दूर हो गया । फिर ख़्याल आया—माला के हृदय में उसके प्रति अनुराग की जो कमी हो गई थी, उसका कारण शायद उसकी अपनी ही न्यूनता थी । माला ने उसके प्रति अशिष्ट व्यवहार कुछ नहीं किया हाँ मन्नन के प्रति माला के अनुराग से उसका अपमान अवश्य था ।

दोनों हाथ सिर के नीचे रखे वह निर्निमेष पड़ा था उसे मालूम हुआ, कागज़ के इस पुर्जे ने माला को सतीत्व के ऊँचे, आभामय लोक से गिरा दिया ।

वह पत्र को उठा कर उसकी ओर देखने लगा । उस समय वियोग के दुःख की अपेक्षा अपमान का दाह ही उग्र हो रहा था । एक बड़े भारी आघात की आशंका से उसका अंतरात्मा सिहर उठा ? समीप की किसी मिल से सुबह चार बजे के बिगुल ने बजकर उसे नया दिन चढ़ने की सूचना दी । वह फुर्ती से उठा, पत्र की बत्ती बना उसने दाँतों में दबा ली और माचिस की एक सीख खींच बत्ती के एक छोर पर लगा दी ।

कागज़ से एक निर्बल सी लपट उठने लगी । ज्वाला का प्रतिबिम्ब उसकी आँखों की पुतलियों में नाच रहा था । उसे खयाल आया—माला की पहली चिता जली थी उस समय जब मन्नन बीच में आया, यह उसकी तीसरी चिता जल रही थी ।

प्रायश्चित्त

“पूज्य पिताजी श्री चरणों में प्रणाम !

मैं अपने घोर अपराध का दण्ड स्वयं ही भुगत रही हूँ, इसलिये आशा करती हूँ कि आप और समाज मुझे क्षमा करेंगे। मेरे मन और आत्मा पर पाप की छाया किस प्रकार पड़ी ; किस तरह पाप और वासना के प्रभाव को मैंने ग्रहण किया, यह मैं समझ नहीं पाई हूँ। परन्तु पाप की ओर मेरी प्रवृत्ति हुई, मेरे मन में वासना का अंकुर उपजा और उस ओर कदम रख मैंने अनुचित आचरण किया। आपकी सब आशाओं को मैंने मिट्टी कर, अपने और आपके मुँह पर अपने ही हाथों कालिख पोत दी। इस अवस्था में लुपचाप इस संसार से विदा ले, इस असफल जीवन को समाप्त कर, पापाप्लुत शरीर को जीर्ण वस्त्रों की नाई छोड़ मैं परम पिता परमात्मा की असीम दया में विश्वास कर यह प्रार्थना करती हूँ।

हे अन्तर्यामी, दयामय विभो ! मेरी निर्बलता को क्षमा कीजिये और फिर मुझे एक बेर नर शरीर का दान दे इस योग्य बनाइये कि मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालनकर अपने नवीन जीवन को वेदोक्त धर्म के प्रचार में लगा कर, हे भगवान् आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ।

अपनी निर्बलताओं के कारण वासनाओं की ओर प्रवृत्ति होने से मेरा मन, और इन्द्रिय लोलुपताओं से मेरा शरीर अपवित्र होकर मैं अब हे परमपिता, आपके सत्य, अनादि और अनन्त ज्ञान का संसार में प्रचार करने के अयोग्य हो गई हूँ, इसलिए आत्महत्या के घोर अपराध की शरण ले रही हूँ।

हे प्रभु ! यद्यपि आत्महत्या आपकी आज्ञा के विरुद्ध है परन्तु क्योंकि यह अपवित्र शरीर आपकी आज्ञाओं के पालन के अयोग्य हो गया है अब इस शरीर को व्यर्थ धारण कर संसार में एक घृणित जीव की भाँति रहने से क्या लाभ ? हे पूर्ण ब्रह्म ! आपकी इस अधम पुत्री को आपके चरणों में नत होकर यही प्रार्थना है कि इसकी भूल को क्षमा कर अपनी सेवा का अवसर प्रदान करें । आप करुणा के सागर हैं, आपकी असीम दया के लिये, हे जगन्नियंता कुछ भी कठिन नहीं । हे करुणामय ! मुझसे जो अपराध बन पड़ा है, हे दयामय ! उससे मेरी और दूसरी और ब्रह्मचारिणी बहिनों को बचाइये । आप अपनी अपरिमेय शक्ति से उनके हृदय में ज्ञान और बल का संचार कीजिये, ताकि वे पाप और वासना की प्रवृत्ति का दमन कर ब्रह्मचर्य का यथावत पालन कर सकें और अपने जीवन को सब सत्य विद्याओं के आदि मूल वेदोक्त ज्ञान के प्रचार में सफल बना सकें ।

‘पिताजी, आपने अपनी शक्ति भर मुझे ब्रह्मचर्य और सदाचार के मार्ग पर चलाने का पूरा यत्न किया पर न जाने कैसे मेरे मन में निर्बलता प्रवेश कर गई । धर्मशास्त्र में कहा गया है—दश इन्द्रियाँ अश्व हैं और मन सारथी । परन्तु नर नारी के दुर्भाग्य से सबसे पहले यह सारथी ही विपथगामी होकर विद्रोही हो उठता है । इन्द्रियरूपी अश्वों को सुमार्ग पर न चलाकर दायें-बायें हाँकने लगता है । घाड़े वासनाओं की चट्टानों से टकरा कर जलूमी हो जाते हैं और यह शरीररूपी रथ जो सत्य ज्ञान के भण्डार के अमूल्य रत्न को लेकर मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिये परमपिता द्वारा इस संसार में भेजा गया है, चकनाचूर हो जाता है ।

ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण है वेदों के आदेश की उपेक्षा करना । बाल-ब्रह्मचारी भगवान् दयानन्द सरस्वती ने हमें वह मार्ग दिखा दिया है परन्तु हम वासनाओं से आकर्षित हो भटक जाते हैं,

मार्ग भूल जाते हैं। पूज्य पिताजी ! मैंने माँ का सुख जाना ही नहीं। वह मेरे होश सँभालने से पूर्व ही परमपिता की करुणामयी गोद में जा चुकी थीं। आपने ही माता का भी स्थान लेकर पालपोस कर कष्ट सहन कर यह दुर्लभ शरीर मुझे प्रदान किया परन्तु हा दुर्भाग्य, मैंने उसकी कदर न की। आपने मुझे ब्रह्मचर्य के सत्यमार्ग पर चलाने के लिये क्या नहीं किया ? वासनाओं से बचाने के लिए क्या नहीं किया ? बचपन में सब प्रकार के कुसंग से बचाया। पाँच वर्ष की आयु से ही मुझे पवित्र वेद मंत्र कण्ठ कराये, नीति और सदाचार के श्लोक भी याद करा दिये। दोनों समय अपने पास बैठाकर संध्या और अग्निहोत्र भी कराया। बचपन में सदा मुझे मोटे और सादे वस्त्र पहिनाये। शौकीनी की प्रवृत्ति से बचाने के लिए मेरे सिर के बाल भी कटादिये। पैरों में जूता या चप्पल भी, जैसा कि ब्रह्मचारिणियों को उचित है, नहीं पहिरने दिया। विवाह आदि के बुरा प्रभाव डालने-वाले दृश्यों, नाटक, सिनेमा मेले तमाशे सबसे मुझे बचाया और छः वर्ष की आयु में कन्या गुरुकुल में प्रविष्ट करा दिया, जिसे महर्षि की आज्ञानुसार दयालु वैदिक धर्मियों ने स्थापित किया है और जहाँ ब्रह्मचर्य पालन तथा वेदोक्त शिक्षा का प्रबन्ध है। आज मेरी आयु साढ़े चौदह वर्ष की है, सब प्रकार से उचित वातावरण पाकर भी मैं क्यों पथभ्रष्ट हो गई ? हाय दुर्भाग्य !

इसका कुछ उत्तरदायित्व दूसरों पर भी है। नरनारी के मन को निर्बलता से बचाने के लिये ही वेदों में बालक और बालिकाओं के लिये गुरुकुलों की स्थापना का उपदेश दिया गया है और उन्हें सब प्रकार के अनैतिक और वासनामय प्रभावों से बचाने का आदेश किया गया है। परन्तु मैं अपने उदाहरण से वैदिक धर्मावलम्बी महानुभावों को यह बता देना चाहती हूँ कि कलियुग के इन गुरुकुलों का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं। जैसे मुझ पर वासना का प्रभाव पड़ा, वैसे ही दूसरी

ब्रह्मचारिणी बहिनों के मन में भी वासना की प्रकृति जाग उठ सकती है । इसका उपाय होना चाहिए । ऐसा न होने से कन्या गुरुकुलों का उद्देश्य सफल न होगा और महर्षि की आत्मा क्लेशित होगी ।

वेदों की आज्ञा ब्रह्मचारिणियों को गृहस्थों की संगति से बचाने की है फिर क्यों गुरुकुलों में गृहस्थी की शौकिनी के प्रभाव को पहुँचने दिया जाता है ? ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को गरमी की छुट्टियों में नगरों में जाने की इजाजत क्यों दी जाती है ? सात वर्ष गुरुकुल में रहने के बाद पिताजी मुझे एक दफ़े घर लाये । उसका मुझ पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा । जो ब्रह्मचारिणियाँ प्रति वर्ष दो मास के लिये गृहस्थों में जीवन बिता आती हैं, उन पर कितना प्रभाव पड़ता होगा ? वास्तव में बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है । बहुत दूर तक वे ही शौकीनी, विलास और वासना की मारात्मक बीमारी को गुरुकुलों में पहुँचाती हैं । जो लड़कियाँ नगरों में छुट्टियाँ बिताकर आती हैं वे प्रायः सुगन्धित तेल, साबुन, चेहरे पर लगाने की क्रीम, पाउडर आदि का ज़िक्र दूसरी लड़कियों से करती रहती हैं । महीन कपड़ों, रेशमी साड़ियों, आभूषणों, ऊँची एड़ी के जूतों और मोज़ों की प्रशंसा करती हैं । दो तीन ने यहाँ तक स्वीकार किया कि उन्होंने घर जाकर, तान किनारे की धोती, मोज़े, गुरगावी पहरे, सिर में सुगन्धित तेल लगाया, टेढ़ी माँग निकाली, क्रीम पाउडर का व्यवहार किया, सुरमा लगाया और इसमें कोई दोष नहीं ।

इसमें दोष नहीं, तो दोष है किसमें ? ब्रह्मचर्य का ही पालन जब हमने नहीं किया, तो शेष रह क्या गया ? कुछ लड़कियों ने यहाँ तक स्वीकार किया कि उन्होंने नवयुवकों के साथ बैठकर चाय पी और सिनेमा देखा । वे गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर ब्याह करना चाहती हैं । मैं पूछती हूँ; क्या महर्षि का उद्देश्य यही था ? मैं तो आज अपने अपराध की गुरुता का अनुभव कर रही हूँ और संसार से विदा लेती हूँ । परन्तु समाज को सावधान किये जाती हूँ कि वह बेखबर न रहें ।

गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का जैसा पालन होना चाहिए, वैसा नहीं हो रहा । वहाँ भी शौकीनी की बीमारी पहुँच रही है । लड़कियाँ जान-बूझकर बालों को इतना ढीला बाँधती हैं कि कानों पर घूम जाय । जान-बूझकर एक-आध लट छोड़ देती हैं; ताकि सामने लटक जाय । जान-बूझकर कुरते की आस्तीन को कोढ़नी से ऊपर फाड़ देती हैं, ताकि बाँह ब्लाउज़ की तरह दीखे । धोती का आंचल जान-बूझकर सिर से गिरा देती है । इन सब बातों की मनाही है । ऐसा करने से उचित दण्ड भी मिलता है परन्तु यह इस बात का प्रमाण है कि शौकीनी और विलास की इच्छा वहाँ पहुँच ही जाती है, वह दुर्दमनीय है । वे छिपा-छिपा कर कुरतों के किनारों पर सोजनकारी करने का यत्न करती हैं, एक लड़की ने चालाकी से धोती के किनारे पर ऐमे स्याही गिरा ली की फूल की बेल सी मालूम होने लगी । मुझे स्वयं इस प्रकार की इच्छा हुई । गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों को क्यों ऐमे कुसंस्कारपूर्ण दृश्यों को देखने दिया जाता है ? जो अध्यापिकायें पढ़ाने जाती हैं, वे क्यों महोन, इस्त्री किये कपड़े पहिने रहती हैं ? क्यों किनारेदार साड़ियाँ पहरती हैं ? क्यों चश्मा लगाती हैं ? क्यों अंगूठी पहरती हैं ? क्यों ब्लाउज़ और जम्पर पहनती हैं ? जूड़ा बाँधती हैं ? चप्पल या गुरगाबी पहनती हैं ? और फिर क्यों हमें अश्लील पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं ? कहने को पंचतंत्र तथा दूसरी पुस्तकों में से अश्लील प्रकरण निकाल दिये जाते हैं परन्तु क्या दूसरी पुस्तकों में अश्लीलता नहीं भरी हुई ? महर्षि ने ऐसी पुस्तकें ब्रह्मचारिणियों के लिए बर्जित की हैं । रघुवंश और शकुन्तला नाटक विशेष-विशेष स्थलों को निकाल केर पढ़ाये जाते हैं परन्तु क्या उन छिपाये गये अंशों को पढ़ने की इच्छा हमें नहीं होती ? कोई भी पूर्ण-संस्करण हमें मिलने पर हम सबसे पहले बर्जित को ही पढ़ने का यत्न करती हैं । क्या वाल्मीकी रामायण में अश्लीलता नहीं ? उसमें क्या नहीं लिखा—‘ब्यूढ़ो रस्को वृषस्कन्धः शाल प्रांशुर्महाभुज.....’।

कुमारी ब्रह्मचारिणियों को यह जानने की क्या आवश्यकता है कि पुरुष का शरीर सुन्दर और आकर्षक होता है ! हमें यह क्यों बताया जाता है कि दुष्यन्त शकुन्तला के रूप पर मोहित हो गया था । यह जानकर क्या यह भाव उठना स्वाभाविक नहीं कि किसी दिन कोई हमारे रूप पर भी मोहित होगा ? यह सौन्दर्य की चर्चा ब्रह्मचारिणियों को क्यों सुनाई जाती है ? परमपिता परमात्मा के सिवा संसार में सुन्दर कौन है ?

प्राकृतिक सौन्दर्य का आकर्षण भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक है । आकर्षण तो उसमें भी है । गुरुकुल में फुलवाड़ी क्यों लगाई जाती है ? और फूल तोड़कर हार बनाकर पहिनने की इच्छा होने पर या बालों में फूल खोंसने की इच्छा होने पर हमें बुरा क्यों कहा जाता है ? वार्षिक उत्सव करके सुगन्ध लगाये शृंगार किये नगर की स्त्रियों को बुलाकर हमारे मन में जलन क्यों पैदा की जाती है ? हमारी अध्यापिकाओं के गाल केले के पत्ते की तरह क्यों चिकने और मुलायम रहते हैं ? ब्रह्मचारिणियों का आश्रम सृष्टि के उस कोने में होना चाहिए जहाँ इन वासनामय प्रभावों की पहुँच न हो । पर वह स्थान है कहाँ ?

इन फूलों पर तितलियों को क्यों मण्डराने दिया जाता है ? इन पक्षियों को गुरुकुल में व्यभिचार क्यों करने दिया जाता है ? क्या इसका बुरा प्रभाव ब्रह्मचारिणियों के मन और मस्तिष्क पर नहीं पड़ता ? हमें पुरुषों के चित्र क्यों देखने दिये जाते हैं ? हमें यह बताने की क्या ज़रूरत है कि पुरुष भी संसार में होते हैं और स्त्री से उनका विवाह होता है ? यही सब रोगों की जड़ है । माना कि दर्पण हमें नहीं दिया जाता परन्तु लोटे के जल में मुख की छाया क्यों पड़ जाती है । हमें यह क्यों बताया जाता है, केश लम्बे और लोचन विशाल अच्छे होते हैं । यह चीज़ें अच्छी क्यों होती हैं ? यह केवल शृंगार की भावना है, विलासिता है, मन का अब्रह्मचर्य है, पतन है ।

मैंने क्या किया ? पाप की अग्नि से झुलसकर क्यों परम पिता की शांतिमय गोद में पुनर्जन्म की अभिलाषा से मुझे आश्रय लेना पड़ा ? वेद के सत्यज्ञान का प्रचार क्या यह ब्रह्मचारिणियाँ कर सकेंगी जिनके मन में वासना और अब्रह्मचर्य की भावना प्रविष्ट हो चुकी है ?

गुरुकुल के ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए ही मेरे मन में विलासिता की भावना उठ चुकी थी परन्तु अधिष्ठात्रियों के मुख से सदुपदेश सुन कर मैं उसका दमन करती रही । आखिर मेरे दुर्भाग्य से वह दिन आया, जब पिताजी आप मुझे इस वर्ष बहुत कमज़ोर हो जाने के कारण दो मास की छुट्टी में घर ले आये । मैं अमृतसर आते ही चकाचौंध हो गई । कुछ सोचने या विचारने की शक्ति मुझ में न रही । शृंगार से लदी हुई और सुगन्ध उड़ाती हुई इन सब स्त्रियों को देख मैं यह याद न रख सकी कि मेरे जीवन का पवित्र आदर्श क्या था ?

इस विलास की नगरी में, विलासिता की जीवित पुतलियों के बीच आ मैं सब कुछ भूल गई । त्याग के बलपूर्वक बैठायें हुए आदर्श मेरे मन से उखड़ गये । घर में कोई और स्त्री न होने से, पिताजी आपने यह उचित समझा कि ताऊजी के यहाँ लड़कियों और स्त्रियों के बीच मुझे रखा जाय । यदि आप मुझे अकेले अपने पास रखते तो शायद मेरे लिए वही अच्छा होता । ताईजी, भाभी, 'मृणाल' और 'पद्मा' के बीच आकर मैं कैसी लगती थी ? ये लोग आपस में मुझे जंगली बकरी कह कर पुकारती थीं ।

यहाँ आकर मैं केवल देखती ही रही, सोचा या समझा मैंने कुछ भी नहीं । यहाँ आकर मैंने देखा ताऊजी के सिवा संध्या कोई नहीं करता । हवन ताऊजी भी केवल एक ही समय करते हैं । संध्या समय हवन मैं अकेली ही करती थी । सोलह आश्विन की संध्या को मैं हवन न कर सकी, बातें ही सुनती रही और भोजन बिना हवन किये ही कर लिया । सत्रह को प्रातः काल मृणाल ने मुझमें 'दरबार-साहिब' घूमने चलने के लिए कहा । वह मुझे ब्रह्मचारिणी के वेश में साथ ले जाने

के लिए तैयार न थी। उसके कहने से मैंने रेशमी साड़ी पहनी, ब्लाउज़ पहना, ऊँची एड़ी का जूता पहरा। बाज़ार में जगह-जगह आदम-कद आइनों में जब मुझे अपनी आकृति दिखाई देती थी, मैं आनन्द बिह्वल हो मुस्करा देती। मेरा मन भटक सा गया घर लौटकर मृणाल के वह कपड़े उतारने को मेरा मन न हुआ।

मैं उसके शृंगार की आलमारी की चीज़ों को देखने लगी। उसमें पाउडर था, क्रीम थी, सुगन्ध थी, होंठ रंगने की बत्ती, नाखून रंगने का रंग और न जाने कई और चीज़ें जिन्हें मैं पहचान न सकी, मौजूद थीं। छजे से मैंने देखा एक नवयुवती मृणाल की ही तरह शृंगार किये हुए गली में से चली जा रही थी। उसके साथ एक नवयुवक था। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े चले जा रहे थे। मन में इच्छा हुई दौड़कर जाऊँ और उस नवयुवती को हटाकर उसका स्थान ले लूँ।

मैं लौटकर मृणाल की आलमारी के सामने आ खड़ी हुई। ज्ञान की आँखों पर अज्ञान की पट्टी बंध चुकी थी, मन पाप-पंक में फँस चुका था। मैंने अपने माथे पर बेंदी और होठों पर लालबत्ती लगाई। सिर के बाल काढ़ टेढ़ी माँग सँवारी और सुगंध लगाई। फिर गली में जानेवाली औरत की तरह आँचल संवार, कमर पर हाथ रख मैंने आइने में देखा। उस समय मेरा मन पाप की सीमा पर पहुँच चुका था—इस अन्तिम समय मैं सत्य को छिपाने का यत्न न करूँगी—मन में इच्छा हुई कि मेरा ब्याह हो जाय, इसी समय हो जाय, मैं गुरुकुल न जाऊँ। मैं छजे पर आकर खड़ी हो गई, सामने से जो भी अच्छे कपड़े पहरे युवक जाता दिखाई देता, इच्छा होती उसी से मेरा विवाह हो जाय।

उसी समय छजे पर आहट पा, मैंने घूमकर देखा, पिताजी आप खड़े थे। उसी अवस्था में बहुत देर तक घृणा और आश्चर्य से आप मुझे देखते रहे और बिना कुछ कहे ही लौट गये। मैं लज्जा और आत्म-ग्लानि से पसीना-पसीना हो गई।

पूज्य पिताजी ! उस समय मुझे ज्ञान हुआ कि मैंने क्या किया है ? बहुत देर तक मैं अपने पाप आचरण के लिए पश्चात्ताप करती रही । अब मैंने समझा कि अपने ब्रह्मचर्य को मैंने वासना की आग में भोंक दिया है—मैंने वैदिक शिक्षा और गुरुकुल को कलंकित कर दिया । आपकी आशाओं को मटियामेट किया, आपको कलंकित किया, मेरे जीवन का जो उद्देश्य ब्रह्मचर्य पूर्वक वैदिक शिक्षा ग्रहण कर वेद के सत्यज्ञान का प्रचार करना था, उस उद्देश्य के योग्य मेरा शरीर नहीं रहा । अब इस कलंकमय शरीर को बचाकर रखने से क्या लाभ ? कुमारिल भट्ट ने अपने पाप का प्रायश्चित्त तुपां की अग्नि में झुलूस कर किया था, क्योंकि उसने बौद्ध धर्म के आचार्यों को, जो उसके ज्ञान के पिता थे, धोखा दिया था । पिताजी मैंने आपको धोखा दिया है, इसलिए मैं भी अपने पाप का प्रायश्चित्त प्राणान्त द्वारा ही करूँगी । मेरी आत्मा प्रायश्चित्त द्वारा निमल हो जायगी परन्तु अपने इस कलंकित शरीर और मन का मैं अन्त कर रही हूँ, अब कुछ ही क्षणों की देर है । आप इस कलंकिनी, विश्वासघातिनी का मुख अब जीवित अवस्था में नहीं देख सकेंगे । मैंने विष खा लिया है ।

और कोई विष यहाँ न मिल सकने के कारण मैंने शहद और घी मिलाकर खा लिया है^१ । मुझे मृत्यु से कुछ भय नहीं, मुझे कुछ पीड़ा अनुभव नहीं हो रही और न मेरी पीड़ा से डरती हूँ । मुझे दुःख है तो केवल इस बात का कि मैं जीवन के पवित्र मार्ग से विचलित हो गई । परमपिता परमात्मा मुझे उस जन्म में सद्बुद्धि प्रदान करें, ताकि मैं उनके ज्ञान की ज्योति का जो उन्होंने वेदों द्वारा प्राणि मात्र के उपकार के लिये सृष्टि के आरम्भ में प्रदान की है, संसार भर में प्रचार कर

१. कुछ लोगों का विश्वास है, घी और शहद बराबर मात्रा में मिलाकर खाने से वह विष का प्रभाव रखता है ।

सकूँ । हे दयामय पिता परमात्मा ! आप मेरे पिताजी को मुझ कलंकिनी द्वारा दिये जानेवाले संतान वियोग को सहन करने की शक्ति दीजिये । मैं इस कलुषित जीवन द्वारा उन्हें संसार में लज्जित नहीं करना चाहती ।

मुझे विष खाये हुए पाँच घण्टे हो गये हैं । अभी तक सिवाय मतली आने के और कुछ नहीं हुआ है, प्रभु, अब और देरी न करो । इस पापिन को प्रातः काल लोगों के जागने से पूर्व ही अपनी करुणामय गोद में बुला लो । अब मैं अपना कलुषित मुख किसी को नहीं दिखाना चाहती ।

लेकिन जाते समय मैं आर्य पुरुषों से यह प्रार्थना करके जाना चाहती हूँ, यदि आप वास्तव में ब्रह्मचारिणियों द्वारा जग का कल्याण चाहते हैं, तो उनके आश्रम को विलासिता और शृंगार के सभी प्रकार के आकर्षणों से बचाकर रखिये, ताकि दूसरी बहनें मेरी तरह पथभ्रष्ट न हो जायँ । ब्रह्मचर्याश्रम ऐसी जगह होने चाहिए जहाँ स्त्री पुरुष के सम्बन्ध, या विलास वासना की भावना की पहुँच किसी भी प्रकार न हो सके । लेकिन ऐसा स्थान क्या सृष्टि भर में कहीं भी मिल सकेगा ? फूल, तितलियाँ, मक्खियाँ, चिड़ियाँ, तोते, कबूतर यह कहाँ नहीं पहुँच सकेंगे ?

क्या ब्रह्मचर्याश्रम में रहनेवाले जीवों को भी ब्रह्मचर्य की शिक्षा नहीं दी जा सकती ? वह सब उपकरण ब्रह्मचर्य के लिये घातक हैं । कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला पहिले ही प्रलोभन में क्यों फँस गई ? अवश्य ही आश्रम निवासी विवाहित तपस्वियों और जीव जन्तुओं की जीवनचर्या का प्रभाव उस पर पड़ा होगा । शकुन्तला का चरित्र कुछ आदर्श नहीं था फिर भी उसकी कोई निन्दा नहीं करता । क्यों वह वन्य पुष्पो से शृंगार करती थी ? क्यों दुष्यन्त को देखते ही उसके मन में विवाह-सम्बन्धी इच्छा उत्पन्न हुई ? क्या यह सब उचित था ?

उमा ने क्यों पति के लिये तपस्या की । कौमार्य जीवन में पति की कामना करना मानसिक व्यभिचार है । पर वे सब तो सदाचार का

आदर्श मानी जाती हैं.....तो फिर मैं ही आदर्श से कैसे गिर गई ? मैं प्राण त्याग द्वारा अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रही हूँ, लेकिन अभी तक विष ने अपना प्रभाव नहीं दिखाया ।

यह क्या; 'दरबार-साहिब' जानेवाली स्त्रियाँ शनै-शनै हरि-कीर्तन करती हुई उठने लगीं ! क्या प्रातः काल लोगों को अपना कलंकित मुख दिखाने के बाद ही, लज्जा और लांछना का बोझ सिर पर लाद कर ही, मैं इस संसार से बिदा ले सकूँगी । मृणाल और पद्मा के सामने जो मुझे जंगली बकरी समझती हैं, मैं कैसे मुख दिखा सकूँगी ? वे भी कुमारी हैं, संसार की कल्पना में जितना शृंगार हो सकता है, वह सब वे करती हैं । उन्हें न लज्जा है, न आत्मग्लानि । उन्हें न कोई लज्जित करता है, न प्रतारणा देता है—सब उन्हें प्यार करते हैं । वे अभिमान से सिर उठा कर चलती हैं ।

पाप क्या मेरे ही लिये है ; उनके लिये नहीं ?.....पिताजी आपने मेरी ओर किस तिरस्कार की दृष्टि से देखा था ?.....क्या आप मृणाल और पद्मा को इस दृष्टि से देखते हैं.....?

आँखें भपकने लगी हैं.....पिता परमात्मा मुझे अब अपनी करुणामय गोद में बुला रहे हैं.....। यह निद्रा नहीं, महा निद्रा है.....ओ३म् तत् सत् ।”

हृदय

कई वर्ष से मैं अपने मित्रों को पहली जनवरी के दिन निमन्त्रित किया करता हूँ। कुछ 'नववर्ष' मनाने के लिए नहीं। नववर्ष तो मैं 'वैसाखी' से गिनता हूँ। ऐसे ही, फुर्सत और सुविधा के विचार से।

सब प्रबन्ध हो चुका था। निमन्त्रण की रात का अन्त सिनेमा से करने का विचार था इसलिए 'रंगशाला' के मैनेजर को मैं एक दर्जन कुर्सियाँ सुरक्षित रखने के लिए टेलीफोन कर रहा था। एक बड़ा नामी चित्र 'कल्पना' उस रोज़ चलनेवाला था। जगह सुरक्षित कर लेना ज़रूरी समझा। टेलीफोन का चोंगा (Mouth piece) नीचे रखा ही था कि प्रसादी ने एक तार का पीला लिफ़ाफ़ा हाथ में दिया। कुछ शंकित भाव से लिफ़ाफ़ा फाड़कर देखा, काठ मार गया।

बख़्शी जी का तार था काँगड़े से,—

'मिस्टर खन्ना भयानक बीमार, तुरन्त पहुँचो।'

तार मेज़ पर रख दोनों हाथों से सिर थाम बैठ गया। क्या करूँ और क्या नहीं? अपनी समझ को कोसा, किस मुहूर्त में खन्ना को काँगड़े भेज दिया था।

क्या हो गया उसे? कौन बीमारी आ लगी? क्या किसी चट्टान से लुढ़क पड़ा या किसी भालू चीते ने उसे फाड़ खाया? अस्तु जो भी होता, गये बिना चारा न था।

सोचा, बख़्शी क्या कहते होंगे? उनके माथे यह अच्छी बला पड़ी। अगर जाता हूँ तो कल पहली जनवरी को सब मित्र लोग क्या कहेंगे? कोई कहेगा, ख़ूब मज़ाक किया और अगर कोई इसे अपमान समझ ले तो क्या आश्चर्य? और रुपये जो पानी में मिल गये सो अलग।

रानी को समझाया, मित्रों को सब बात समझा कर पहिले से ही निमन्त्रण स्थगित करने की सूचना दे देना और जैसे हो—गये बिना तो चारा नहीं ।

रानी ने कहा—“घबराओ मत बख्शी जी को तार दे दो, वे खन्ना को भेज देंगे या खुद आकर छोड़ जायेंगे । वहाँ भला क्या इलाज होगा ? डाक्टर भी तो वहाँ मिलना मुश्किल है और यहाँ यह सब काम बिगड़ जायगा ।”

सुनकर मेरे तन बदन में आग लग गई । बेवसी की हालत में जब कोई उल्टी दलील सुझाता है तो ऐसा ही होता है । भुँभुला कर कहा—‘क्या उल्टी खोपड़ी की बात कहती हो ! अगर वह आ सकने लायक होता तो आ नहीं जाता ? और बख्शी क्या मेरे बाप के नौकर हैं जो उन्हें हुक्म दे दूँ । तुम्हारे ही कहने से तो मैंने उसे परिचय-पत्र देकर वहाँ भेजा और मुसीबत आ पड़ी तो उल्टा रास्ता दिखाती हो ?’

मेरे इस दोषारोपण में सचाई का अंश बहुत कम था परन्तु रानी उसे उदारता से सह गई और बोली—‘न हो, मैं चली जाऊँ ।’

स्त्रियों की पूर्ण स्वतन्त्रता और समानता का पक्षपाती मैं ज़रूर हूँ परन्तु जब वे अपने आपको पुरुषों की अपेक्षा भी अधिक चतुर समझने लगती हैं तब, क्रोध आना स्वाभाविक है । भन्ना उठा । परन्तु कुछ कह न सका ।

पढ़ा है, रूस में पुराने समय विवाह के समय जब स्त्री पति को सौंपी जाती थी, एक चाबुक भी साथ में दिया जाता था, उसका ज़रूर कुछ मतलब रहा होगा । पुरुषों के अधिकार का वह स्वर्णयुग गया । अब तो पचास प्रतिशत काम स्त्री की आज्ञा से और शेष उसकी अनुमति से करने पड़ते हैं । सो दाँत किटकिटाने के सिवा,—वह भी ‘नेपथ्य’ में—और कुछ चारा नहीं ।

बड़े दिन की छुट्टियों से पहिले प्रोफेसर खन्ना ने आकर मुझ से

कहा था—‘इन लुट्टियों में मैं अपनी कविताओं की पुस्तक को समाप्त कर प्रकाशक को दे देना चाहता हूँ । लाहौर के भीड़-भड़के में यह काम नहीं हो सकता । कोई एकान्त स्थान बताओ, जहाँ मैं इस काम को समाप्त कर सकूँ ।’ इसी के फलस्वरूप, प्रोफेसर साहब को परिचय-पत्र देकर बख्शीजी के यहाँ काँगड़े भेज दिया और यह भी कह दिया कि पुराने काँगड़े का टूटा हुआ किला जैसा एकान्त और भावपूर्ण स्थान है, वैसे स्थान पृथ्वी पर अधिक नहीं । उसी सिलसिले में यह तार आ पहुँचा ।

रात भर सफ़र कर सुबह मुँह-अँधेरे पठानकोट पहुँचा और वहाँ से पहिली मोटर में पहाड़ी-बर्फ़ानी हवा से बिंधता हुआ प्रायः दस बजे काँगड़े पहुँच गया । शंका से धुकधुकाते हृदय से लम्बे-लम्बे क़दम रखता हुआ मैं बख्शी जी की कोठी पर पहुँचा ।

दफ़्तर में कोई न था । सीधा भीतर चला गया । जिस कमरे में खन्ना के होने का अनुमान था, उसकी ओर ही चला । पलंग के एक ओर बख्शी जी और दूसरी तरफ़ सरकारी अस्पताल के डाक्टर कुर्सी पर बैठे थे । वे लोग मेरी प्रतीक्षा में थे ।

खन्ना पलंग पर था । उसकी आँखें सजग खुली हुई, हाँ चेहरा कुछ पीला था । मानों उसने मुझे देखकर भी नहीं देखा । मैं कुछ न कह आँगीठी के समीप की कुर्सी पर जा बैठा । बख्शीजी ने मेरी ओर देख डाक्टर से कहा—‘आप ही प्रोफेसर खन्ना के मित्र हैं ।’

डाक्टर ने स्वीकृति सूचक भाव से सिर हिला दिया ।

उसी समय खन्ना सहसा गा उठा—‘पले.....नीठड़ी.....होयाँ !’

मैं चकित रह गया । खन्ना छत की ओर देख करुण परन्तु भर्राए हुए स्वर में गाने लगा,—

‘सीकन्दरे दीये धारे मुइय्ये !

पले नीठड़ी होयाँ, पले नीठड़ी होयाँ,

तेते परे-परेलड़िया मुइय्ये, मेरे पेइय्ये………!’

बड़ी लम्बी तान से, जैसे काँगड़े की पहाड़ियों में लम्बी-लम्बी तानों से लोग गाया करते हैं, वह गाने लगा। मैं हैरान था, इतनी जल्दी वह इस स्थान की बोली कैसे सीख पाया। गाना बीच में छोड़ खन्ना लिहाफ़ अलग फेंक, उठ भागने की चेष्टा करने लगा परन्तु डाक्टर और बख्शीजी पहिले से सतर्क थे। उन्होंने उसे दबोच लिया। दूसरी ओर से मैंने थामा। वह फिर चुप हो लेट रहा।

मालूम हुआ, प्रायः पिछले रोज़ बाद दुपहर से प्रबल सन्निपात के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। रात भर उसकी यही अवस्था थी।

हुआ यह कि प्रो० खन्ना नित्य अपनी कविताओं की पाण्डुलिपि ले इधर-उधर जंगलों में निकल जाया करते थे। एक रोज़ वह इस प्रकृति-पूजा में भटक गये और न जाने कहाँ-कहाँ मारे फिरे। आखिर एक पहाड़ी उन्हें बख्शीजी की कोठी पर छोड़ गया। उस दिन से प्रो० साहिब लिखने-पढ़ने का काम कोठी पर ही करते केवल सैर के लिये ही बाहर जाते और उस समय बख्शीजी का कोई आदमी उनके साथ हो लेता।

उनतीस दिसम्बर दुपहर के बाद अढ़ाई बजे की मोटर से खन्ना की पठानकोट लौटने की तैयारी थी। उस दिन प्रातःकाल आठ बजे उन्होंने अन्तिम बार काँगड़े के पुराने किले को देखने की इच्छा प्रकट की। बख्शीजी का एक मुन्शी उनके साथ गया।

आकाश में घने काले बादल उमड़ रहे थे। ऊँची चोटी पर किले के भग्नावशेष के चारों ओर पर्वत-श्रेणियाँ और चट्टाने अनन्त सागर की भाँति, दृष्टि की सीमा तक फैली हुई थीं। आकाश में क्षितिज से मेघ उमड़-उमड़ कर, और पृथ्वी से पर्वत मालायें उठ-उठकर एक साथ मिल गई थीं। इस आँगन में कहीं गहरी श्यामलता लिये बग-राशियाँ पहाड़ियों पर फैली थीं और जहाँ-तहाँ हल्की हरियाली लिये खेतों के टुकड़े बिछ गये थे। कहीं उभरी हुई पहाड़ियों के बीच से सूखी हुई

पहाड़ी नदियों के मार्ग हलकी अनी की रेखा के समान दिखाई पड़ रहे थे। कहीं जल की पतली धारायें मेघों की छाया पड़ने से बहुत लम्बे-लम्बे काले नागों की भौंति सो रही थीं।

सुदूर नीचे पहाड़ी की तराई में प्रबल वेग से बहती हुई वाण गंगा चट्टानों से टकरा कर घनघोर शब्द कर रही थी परन्तु हवा इतनी तेज़ी से बह रही थी कि नदी का शब्द सुनाई न पड़ सकता था।

तेज़ ठण्डी हवा, मेघावृत्त आकाश, उस पर बूँदा बूँदी होने लगी। सर्दों क्या थी, तीर सी बदल को पार किये जाती थी। एक गम्भीर गहरी उदासी चारों ओर छाई हुई। उसी दृश्य को खन्ना किले की एक टूटी हुई दीवार पर खड़े देख रहा था। भावोन्मेश से उसकी आँखें मुंदी जा रही थीं। खन्ना जैसे आदमी पर—जो काले बादल को देख आहें भरने लगे, इस दृश्य का क्या प्रभाव पड़ा होगा ?

इस दृश्य पर उसकी तरल दृष्टि तैर रही थी। तेज़ हवा से उसकी हैट उड़-उड़ जाती और वह उसे दबा-दबाकर रख रहा था। उसी समय नीचे कुछ दूर से करुण परन्तु सुरीली और स्पष्ट आवाज़ सुनाई दी। खन्ना ने उस ओर दृष्टि कर देखा, एक पहाड़िन किले के भीतर की खील्ली ढलवाँ ज़मीन पर उगे लम्बे घास को हसिये से काट रही है।

वह सामने की ऊँची पर्वत-श्रेणी की ओर देख हृदय हिला देनेवाले स्वर में गा रही थी—

“सीकदरेदीये धारे मुइये, पले नीठड़ी होया, पले नीठड़ी होयां।”

खन्ना बुत की तरह खड़ा उसे सुनता रहा। वह ज़रा चुप हुई। मुंशी की ओर घूम आर्द्र स्वर में खन्ना ने पूछा—‘यह क्या गाती है ?’

मुंशी ने कहा—‘साहब, यह अपने मायके जाने का गीत गाती है।’

खन्ना ने कहा—‘इसका मतलब बताओ।’

मुंशी ने समझाया—‘वह जो ऊँची पहाड़ियों का सिलसिला है, उसे पहाड़ी लोग ‘सिकन्दर-की-धार’ बोलते हैं। इस लड़की का मायका

सिकन्दर की धार की परली तरफ है। वह गाती है, सिकन्दरे दिये धारे पले नीठड़ी होयाँ—ओ सिकन्दर की धार पल भर को तू नीची हो जा।' मरी, तू पल भर को भुक जा !

हवा का तेज़ भोंका आया और खन्ना की हैट उड़कर यह गई वह गई ! मुन्शी उधर झपटा परन्तु हैट हवा में उड़ते हुए सूखे पत्ते की भाँति बहुत दूर बीहड़ में चली गई ।

खन्ना ने उपेक्षा से कहा—‘जाने दो ! हाँ, वह क्या गाती है ?’

इतने में औरत ने गाया—‘तेते परे परेलड़िया मुइय्ये, मेरे पेइय्ये ओ..... !’

मुन्शी ने कहा—‘यह कहती है, ‘तेते परे परेलड़िया मुइय्ये !’ अरी तू मर गई तेरी ओट में ‘मेरे पेइय्ये’ मेरे मायके हैं। तू ज़रा नीची हो तो मैं उसे देख लूँ ।

खन्ना चुपचाप, घास काटनेकी उलझन के कारण संगीत की उन टूटती हुई मधुर तानों को सुन रहा था। वर्षा तड़ातड़ उसके सिर पर पड़ रही थी और ओवरकोट पर से बहती नीचे चली जा रही थी। मुन्शी ने अदब से अपना कम्बल उतार कर देना चाहा परन्तु खन्ना ने ध्यान न दिया।

मुन्शी ने कहा—‘साहब इधर आइ में हो जाइये, सर्दी ज्यादा है।’ खन्ना ने सुना नहीं। उसके कान चातक के समान स्वाती बूँद की प्रतीक्षा में थे। वह पहाड़िन वर्षा में भीगती थी, घास काटती थी और जब तब टेर लगा देती थी—

‘सिकन्दरे दिये धारे मुइय्ये !

‘पलें नीठड़ी होयाँ, पलें नीठड़ी होयाँ ओ, तेते परे परेलड़िये मुइय्ये मेरे पेइय्ये।’

मुन्शी के कई दफ़ा टोकने पर खन्ना लौट चलने को तैयार हुआ। उसके कानों में अब भी पहाड़िन के गीत की गूँज थी परन्तु शरीर सर्दी से विजड़ित हो जाने के कारण कदम लड़खड़ा रहे थे।

प्रो० खन्ना के लौट आने पर बख्शीजी ने देखा, उनके कपड़े एक-दम भीगे हुए हैं और होंठ सर्दी से नीले पड़ गये हैं। फौरन गरम चाय लाने के लिए कहा गया और खन्ना कपड़े बदलने का उद्योग करने लगा परन्तु बीच में ही लड़खड़ा गया। उसे एक आराम कुर्सी पर टिका दिया गया। चाय आते-आते उसके दाँत बँध गये।

प्रायः आध घण्टे में सरकारी अस्पताल के डाक्टर आ पहुँचे। डा० ने निदान कर जब विषम सन्निपात हो जाने की बात कही तो बख्शीजी बहुत घबराये। मुझे तार द्वारा बुलाना उन्होंने आवश्यक समझा। रात भर खन्ना के हाथ पैर सहलाये गये। डाक्टर ने कई दवाएँ लगाईं परन्तु कुछ न बना।

×

×

×

रानी ने सुना तो मटर के दानों से आँसू टपकाने लगी। बोली—‘हाय बेचारा खन्ना !.....जी, उसकी कविताओं की पुस्तक में उसकी फोटो सहित छपवाऊँगी।’

मैंने कहा—‘कविता की पुस्तक ! अब कहाँ रखी है, वह पुस्तक ? वह नहीं छप सकती।’

आँसू पोछ रानी ने कहा—‘नहीं लाओ, मुझे दे दो मैं छपवाऊँगी।’ ‘छपवाओगी’.....मैंने कहा—‘.....! जो आदमी एक गीत के पीछे जान दे दे, उसकी कविताओं से संसार का क्या भला होगा ? मैंने वह पाण्डुलिपि उसके शरीर के साथ ही विसर्जन कर दी।’

रानी ने वितृष्णा से मेरी ओर देखकर कहा—‘हाय, तुम बड़े हृदय हीन हो।’

उत्तर दिया—‘हाँ, यदि कविता लिखने और जाड़े की बर्सात में जाड़ा खा सन्निपात सिर लेने से ही ‘हृदय’ होता है तो उससे मैं अवश्य हीन हूँ।’

पराई

कातिक के दिन थे। वर्षा बीत चुकी थी। दोपहर के समय आधी-रात की सी स्तब्धता छा रही थी परन्तु उसमें रात की लरज़ और डर न था।

पहाड़ों के ढलवानो पर खेतों की जुताई हो रही थी। सुनहली धूप में घास से मढ़ी पहाड़ियाँ, पहाड़ों के पार्श्वों पर चीड़ों के जंगल, जुते अधजुते धूसर खेत, मकानों की फूस और स्लेट की छतें सब चकाचौंध हो रहीं थीं। तलहटी में पानी की कलकल करती धार गली हुई चाँदी-सी भिल्लमिला रही थी। जल जहाँ स्थिर था, शरत के आकाश की प्रति-छाया से ऐसा जान पड़ता था मानो, शरत ऋतु की नीली साड़ी रंगने के लिये नील के कुंड भरे हैं।

पशु वृद्धो के नीचे बैठे संतोष से रौंथ कर रहे थे। स्त्रियाँ घर के आँगन में मक्का और धान को धूप दिखा रही थीं या बरसात के सीले कपड़ों को सुखा रही थीं। पुरुष जुताई में व्यग्र थे। ऊँचे वृद्धो में फ्राव्ता बोल रही थी, पृथ्वी पर खंजन फुदक रहे थे, भाड़ियों में भिल्ली और भींगर अपनी आखिरी ताने अलाप रहे थे। मनुष्य को फुरसत नहीं थी। प्रकृति हेमन्त की निद्रा से पहले अलसा रही थी।

पुरली गाँव से कुछ नीचे विशाल काय चीड़ों की घनी छाया में बड़ा सा बरसाती तालाब है। आसपास के टीलों से रिस-रिस कर इसमें बहुत-सा पानी जमा होता रहता है और फिर बीस फुट नीचे बीहड़ चट्टानों पर भरने के रूप में मोती उछालता गिरा करता है। तालाब बीहड़ चट्टानों से घिरा रहने के कारण ग्वाले पशुओं को यहाँ पानी

पिलाने नहीं लाते । आमतौर पर किसी भी ज़रूरत के लिये यहाँ कोई नहीं आता । गाँव की औरतें ही निराले के विचार से दुपहर या जबतब अकेली दुकेली यहाँ कपड़े धोने आया करती हैं ।

बरसात में बहुत से मैले कपड़े जमा हा गये थे । चार दिन से रक्खी छोटी बहिन पारो के साथ कपड़े धोने वहाँ जाती थी । रक्खी के सिर घर का बोझ माँ के बराबर ही था । उसकी उमर भी सत्रह की थी । शहर होता तो न जाने क्या होता परन्तु वह था काँगड़े का छोटा सा पहाड़ी गाँव ।

पहाड़ी गाँव में संस्कृति और कवित्व शिक्षा के अभाव में कहाँ से हों ? वहाँ न सौन्दर्य का चर्चा न पूजा । रोज़मर्रा के सादे जीवन की गिनीचुनी बातों से ही किसी को फुसत नहीं, लेकिन जब स्त्रियाँ कभी चर्खा कातने बैठतीं या बावड़ी पर मिलतीं, कभी किसी ने लक्खीसिंह की लड़की के चाँद की परी होने में शक नहीं किया ।

यूँ तो सत्रह बरस की आयु में कौन लड़की सुन्दर नहीं जान पड़ती ? यदि सृष्टि का यह विधान न होता तो सृष्टि की परम्परा कैसे चालू रहती । प्रकृति के इस कामचलाऊ (Sin dua-non) सौन्दर्य से परे जो सौन्दर्य है, जिसका अस्तित्व अधिकाश में चित्रों, मूर्तियों और कविताओं में ही मिलता है, जिसकी लाग से साधारण स्त्री या पुरुष मात्र के सौन्दर्य की स्तुति चलती है, वह तो कहीं ही मिलता है ।

रक्खी की छुरहरी देह, हवा में डोलते हुए केले के पत्ते की भाँति स्वयम ही लच-लच जाती, उसका रंग वह था, जिसके पाने के लिए शहर की चतुर रमणियाँ पर्ल-शेड (मोती भलक) पाउडर का व्यवहार करती हैं । लम्बी पलकों वाली लम्बी आँखें कानों को छू लेना चाहती थीं । माथे से सीधी उतरती ज़रा लम्बी नाक, पतले-पतले होंठों को देख सहसा सीधी खड़ी होगई थी । हँसी उसके मुँह में छिपे अनमोल मोतियों की माला को उघाड़ने के लिये पागल रहती ।

रक्खी और पारो लकड़ी की छोटी-छोटी थापियों से आहिस्ता-आहिस्ता पीटकर कपड़ों को धो-धो एक ओर रखती जाती थीं। अपने शरीर के कुरत और सिलवारें उन्होंने सब से पहिले धोकर एक ओर सूखने डाल दिये थे ताकि चलने के समय तक सूख जाँय ! रक्खी शरीर पर केवल एक चादर लपेटे हुए थी। पारो की उमर कम होने के कारण कमर में केवल एक अँगोछा था।

रक्खी ने कहा—‘पारो सुक्खू के कपड़े कहाँ लाई ?’

पारो ने जवाब दिया—‘मुझे क्या पता, माँ ने जो दिया ले आई।’

रक्खी ने व्यग्र होकर कहा—‘हाय हाय, माँ ने सुक्खू के कपड़े तो दिये ही नहीं, वह क्या पहरेगा ? बड़ी रानी बहिन है, जा भागकर ले आ।’

पारो ने एक भीगी हुई मिलवार पहनी, सिर पर अँगोछा रखा और ऊपर कुछ धोये हुए कपड़े सिर पर थामे वह घर की तरफ भाग गई।

पारो चट्टानों के परे दस कदम ही गई थी कि रक्खी के मन में खटका हुआ। उसके मन ने कहा—पारो को भेज अकेले रह उसने अच्छा नहीं किया।

उसे सहसा पूरन का खयाल आया। पूरन बीस-इक्कीस बरस का नौजवान था। उसका मकान पुरली के सामने, पानी की पतली धार के उस पार, पहाड़ के ढलवान पर बसे पनेड़ी गाँव में था। वह नम्बरदार का लड़का था। आसपास के सभी लोग पूरन की तारीफ़ करते थे। बहुत समझदार नौजवान, घर-बार का काम काज बड़े लगन से देखनेवाला, बड़े भाइयों के सामने उसने कभी आँख न उठाई थी।

लेकिन रक्खी उससे नाराज़ थी। वह उससे डरती थी। पाँच छः दफ़े पूरन उसे बावड़ी पर या सुबह शाम बाहर जाते या लौटते मिला था। एकान्त देख बहुत आहिस्ता से रक्खी को पुकार लेता। किसी

दूसरे आदमी के सामने वह चुप रहता । रक्खी को निश्चय था, पूरन उसे अकेले में मिलने की चेष्टा में रहता है । वह थापी से थप-थप कपड़े पीटती जाती और पूरन की दुष्टता की बात सोचती जाती थी ।

तालाब से जिस जगह भरना गिरता है, वहाँ गरने की भारी भाड़ी है । कुछ आहट पा रक्खी ने सिर उठाकर देखा । सचमुच पूरन ही भाड़ियों की आड़ से निकलकर सामने खड़ा था । रक्खी बहुत घबराई, उसकी बल खाई लटें चारो ओर बिखर रही थीं । उसके शरीर पर केवल एक भीगी हुई चादर लिपटी थी । पूरन ने होठों पर उंगली रख, उसे बिलकुल चुप रहने का संकेत किया । रक्खी क्रोध और लज्जा में बावली होगई ।

शरीर को चादर में सिमटा, आँखे निकाल उसने कहा—‘हट यहाँ से ! तू यहाँ क्यों आया, बेशर्म !’

इस फटकार की पर्वाह पूरन ने न की । वह कुछ कदम आगे बढ़ आया । रक्खी ने भुंभुलाकर कहा,—‘जा यहाँ से, नहीं तो मैं अभी चिल्लाती हूँ, तेरा सिर दाँव से कटवाती हूँ ।’

पूरन के चेहरे पर एक आर्द्र व्याकुलता छाई थी मानो उसे अपने प्राणों का नहीं कुछ और ही भय था । एक कदम और आगे बढ़ एक लम्बी साँस खींच उसने कहा—‘रक्खी !’

रक्खी ने और सिमटकर कहा—‘मैं चिल्लाती हूँ, दूर हो चाण्डाल !’

आहिस्ता से पूरन बोला—‘तू चिल्लायेगी तो मैं भरने वाली चट्टानों पर कूद पड़ूँगा ।’

रक्खी ने चिल्लाने के लिये छाती में साँस भरी, पलक मारते में पूरन भरने की एक डाल पकड़ भरने पर लटक गया । केवल पूरन का मुँह और बाहें रक्खी को दिखाई दे रही थीं ।

रक्खी की चिल्लाहट दब गई। भय से तड़फ़ कर उसने कहा—
‘हाय, ना पूरन ।’

पूरन फिर ऊपर आगया। रक्खी उसी तरह गठरी सी बनी बैठी थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में जल भर आया। पूरन को आगे आते देख, रक्खी ने गिड़गिड़ाकर कहा—‘हाय, मैं तेरे पैर पड़ती हूँ, तू जा ।’

काँपते हुए स्वर में पूरन बोला—‘मैं जाता हूँ, एक बात पूछूँगा, रक्खी तू मुझसे ब्याह करेगी ?’

रक्खी का सारा शरीर लाल होगया। उसने फिर गिड़गिड़ा कर कहा—‘हाय, तू चला जा ।’

पूरन ने कहा—‘रक्खी तू मुझसे ब्याह नहीं करेगी तो मैं ज़हर खाकर मर जाऊँगा, बता मुझसे ब्याह करेगी ?’

रक्खी ने कातर स्वर में कहा—‘मैं क्या जानूँ, चाचा जाने। तेरे पैर पड़ती हूँ जा, कोई आजायगा ।’

पूरन ने कहा—‘पारो तो अभी घर पहुँची होगी, रक्खी मैं दिन रात तेरा नाम जपता हूँ, तू मुझसे नाराज़ क्यों रहती है ।’

रक्खी ने अत्यन्त व्याकुल स्वर में फिर दुहराया—‘हाय, पूरन जा ।’

पूरन ने प्रार्थना के स्वर में पूछा—‘सच बता मुझसे नाराज़ है, मेरे सिर की कसम, एक दफ़े बता दे ?’

रक्खी ने आँखें पोंछ जवाब दिया—‘नहीं, अब जा, पारो आजायगी ।’

पूरन ने कहा—‘मैं जाता हूँ, पर तू रोज पानी लेने आमलेवाली बावड़ी पर आना, देख मैं कुछ बोलूँगा नहीं, केवल एक आँख देख लिया करूँगा ।’

रक्खी हाथ जोड़ बिलख कर बोली—‘हाय, पूरन जा ।’

‘जाता हूँ’ पूरन ने कहा—‘पर जिस दिन तू नहीं आयगी मैं इसी भरने पर आकर क्रोध पड़ूँगा’

पूरन चला गया ।

×

×

×

अगले दिन रक्खी दिन भर असमंजस में पड़ी रही। मन भारी-भारी सा होगया। वह पूरन की बात न सोचने का यत्न करती थी परन्तु वह मन से हटता ही न था। उसे पूरन पर क्रोध आता, क्यों वह उसके मन में बार-बार आता है, क्रोध उसे आता परन्तु पूरन के प्रति पहला विद्वेष और घृणा अब न जाने कहाँ चला गयी ?

रक्खी को जान पड़ता—वह थक गई है, जल में बही चली जा रही, पाँव पृथ्वी पर नहीं लगते, दूर किनारा दिखाई दिया, परन्तु किनारे पर पूरन खड़ा था, चारा न था, उसने आँखें मूंद लीं परन्तु निश्चय था वह डूबेगी नहीं।

तीसरे पहर उसकी छाती लुहार की धौंकनी की तरह धक-धक करने लगी। आमलेवाली बावड़ी पर वह किस तरह जाय और न जाने से ही कैसे निर्वाह होगा ? उसने मन में कहा—चाहे जो हो, यह बेशरमी-मुभसे न हो सकेगी। व्याकुलता और भय से उसके लिये खड़े रहना असम्भव होगया। वह एक चादर में मुँह लपेट खाट पर पड़ गई।

दिये जल गये पर रक्खी खाट से न उठी। माँ के बुलाने पर उसने कह दिया—‘सिर में दर्द हो रहा है।’ उसका हृदय द्रवित होकर नेत्रों के रास्ते बह जाना चाहता था, इच्छा होती था, खाट के नीचे धरती फट जाती और वह उसमें समा जाती। उसी समय उसका पिता लक्खीसिंह बाहर से लौटा। धबराई हुई आवाज़ में उसने रक्खी की माँ से कहा—‘बड़ा जुलम हुआ, नम्बरदार का लड़का पूरन ‘चीड़-ताल’ के भरने से गिर पड़ा।’

रक्खी की माँ की चीख निकल गई, उसने कहा—‘क्या ?’

लक्खीसिंह ने कहा—‘अपनी एक भेंस को दूढ़ने वह ताल पर गया था, जाने कैसे उसका पैर किसी पत्थर पर से फिसलकर वह नीचे भरने में गिर पड़ा। भला हुआ पिरथू नीचे खेत में था। उसने देख

शोर मचाया। कई आदमियों की मदद ले वहाँ से निकलवा नम्बरदार के घर पहुँचवाकर अभी आ रहा हूँ।' लम्बी साँस खींच उसने कहा— 'देखो भगवान की करनी। लड़का चट्टानों पर नहीं गिरा चीड़ों और गरनों की जड़ों में उसकी टाँगें फँस गई, लातों की तमाम खाल खिंच गई पर जान बच गई। चट्टान पर गिरता तो हड्डी चूर-चूर हो जाती।'।

रक्खी ने पहली ही बात सुनी, हाय वह डायन आमलेवाली बावड़ी पर नहीं गई.....वह मूर्छित होगई। बात का पिछला भाग कानों के रास्ते दिमाग में न पहुँच सका। माँ ने जब उसे खाना खा लेने के लिये पुकारा, उत्तर न पा समझ लिया, लड़की को नींद आगई है।

कुछ रात और जाने पर सोने से पहले माँ बेटी को देखने आई। रक्खी खाट पर चित पड़ी खुली आँखों से छत की ओर देख रही थी। माँ को उसने नहीं देखा। माँ ने लड़की के सिर पर हाथ रख दिया— वह बुखार की गरमी से जल रहा था।

माँ और पारो घबराहट में बैठकर रक्खी के हाथों और पैरों को काँसे की कटोरी से मलने लगीं। माँ पारो को पूरन के गिरने और बचने का हाल जैसा-जैसा पड़ोसनों से सुना था, समझा रही थी। धीरे-धीरे वह बात रक्खी के कान में भी पहुँची। वह फूट कर रो उठी। पारो ने पूछा—'बहिन, सिर दरद हो रहा है क्या?'

माँ ने कहा—'नहीं-नहीं बुखार की बेहोशी है। ला ठण्डे पानी का अँगोछा सिर पर रख।'।

रक्खी रात भर रोती रही।

X

X

X

तीज का त्यौहार था। रिम-झिम रिम-झिम पानी बरस रहा था। लड़के-लड़कियाँ, गाँव की मनचली नवेली बहुएँ नम्बरदार के आँगन में लगे शहतूत के बड़े पेड़ पर झूला डाल कर झूल रही थीं और गीत गा रही थीं। रक्खी बहुत मनाने पर भी नीचे न उतरी। वह गुम-सुम

रुआसी मी बैठी थी। आध मील पर उसके माइके हैं परन्तु पहली तीज पर भी एक दिन के लिए उसे माइके जाने न दिया। छोटा भाई बुलाने आकर लौटगया। रात वह पूरन से रूठ गई तो उसे डाँट खानी पड़ी। बरस भर उसे ससुराल आये नहीं हुआ लेकिन इसी बीच में कई दफ़े उसे डाँट और मार की धमकी मिल चुकी थी। वह लाड़ से पली लता की तरह थी। माँ-बाप ने उसे कभी तिछ्छी आँखों न देखा था। उसका दिल भला धमकियाँ सहने लायक था ?

‘वीरो’ रक्खी की ननन्द थी। उसका ब्याह हुए चार बरस होगये थे लेकिन अब भी वह तीजों पर मायके आई थी। रक्खी की ससुराल में वही सहेली थी। जिठानियाँ उस पर नाजायज़ दबाव रखना चाहतीं। सास की नज़रों में छोटी बड़ी सब एक थीं। एक वीरो को ही उसके प्रति पक्षपात था। कुछ उसके अनुपम रूप के कारण, कुछ उसकी सरलता के कारण, कुछ बचपन का सहेलवा। उससे उसे कुछ बटाना न था। वीरो की उम्र कुछ ज्यादा न थी परन्तु उसका दबदबा था। पति भी उसे बहुत मानता था। वह खास समझदार समझी जाती थी। वीरो और रक्खी एक खाट पर लेट घण्टों सुख-दुख की बातें किया करतीं। रक्खी की जिठानियाँ जलतीं और बड़बड़ातीं परन्तु वीरो को कोई कुछ न कह सकता। बड़े घर ब्याहकर लड़की मायके में भी बड़ी हो जाती है।

वीरो ने रक्खी की आँखें अपने आँचल से पोछकर कहा—‘हाय, हाय पागल लड़की इतना घबराती है ?’ रक्खी उसकी गोद में सिर रखकर बोली—‘मैं तो योही मर जाऊँ तो अच्छा है पर मुझ बदकिस्मत को मौत कहाँ ?’

वीरो ने उसे छाती में लगा लिया—‘कैसी बातें करती है, तुझे कौन दुख है पगली; तेरे जैसा मर्द किसके होगा ?’ और उसका सिर चूम लिया।

रक्खी ने कहा—‘जीजी अब वह बात नहीं। मर्दों के दिल का

ठिकाना नहीं। मुझे माँ बाप ने कभी आँख तक नहीं दिखाई। ये मुझे हमेशा धमकाते रहते हैं, मारने की धमकी देते हैं। मैंने कहा—मुझे एक दिन के लिये माँ को देखने भेज दो ! नहीं माना। उल्टे धमकाने लगे। अब जब अपना मन हो तभी हँसते बोलते हैं, नहीं तो बात बात पर डाँट देते हैं। जीजी, अब मेरा दिल जीने को नहीं चाहता। उनका दिल अब फट गया है। न जाने उनका दिल 'उसी' बात से नाराज़ है, पहिले दिन ही मुझे डाँटने लगे थे। जीजी उनका जी बड़ा कर्दा है, जरा दया नहीं। उन्हें मेरी कुछ परवाह थोड़े ही है !

वीरो ने रक्खी की पीठ पर हाथ रख, उसे गोद में खींचकर कहा—'पागल है, तेरी जितनी परवाह पूरन करता है, उतनी कोई क्या करेगा ? मर्द ने जरा डाँट-डपट न की तो ऐसा मट्टी का लौंदा-मर्द ही क्या ? यह तो मर्दों की मर्दानगी है, उनका क्रायदा है। बिलकुल मिनमिन करे, ऐसे मर्द से तो किराहत उठती है। पागल, अपने मर्द की डाँट तुझे बुरी लगती है ? तेरी परवाह उसे न हो तो तू कहीं जाये, उसे क्या मतलब। तू तो उसके दिल का टुकड़ा है। इसी से तुझे पूरन सोने की डिबिया में रखता है। मैं जानती हूँ, तेरी तकलीफ़ सुनकर पूरन कैसे बेहाल हो जाता है पर यह सबके सामने कहने लगे तो कैसे काम चले ? हाय, शरम भी तो आती है। अपनी ही चीज़ को डाँटा भी जाता है। डाँटने क्या किसी और को जायगा ? जिस पर मरता है उसी को तो डाँटेगा।'।

रक्खी ने गहरी साँस ले आँखू पोंछते हुए कहा—'जीजी, वह बात अब नहीं, कहाँ जान देने को फिरते थे, कहाँ बात-बात पर धमकी !'

वीरो ने छोटी भावी को गले लगाकर कहा—'पहले और बात थी, तू पराई चीज़ थी, तुझ पर हक़ नहीं था, तेरी खुशामद थी। अब तू है अपनी—समझी पगली ?.....तू क्या पराई बनकर रहेगी ? बोल ?'

मज़हब

पन्ना ने एक किताब में पढ़ा था—मास्को में रूसियों ने सैंकड़ों गिरजे, मस्जिदें और सैनागोग (यहूदियों के उपासना स्थान) गिरा दिये और शेष के ऊपर मोटे अक्षरों में लिख दिया, 'मज़हब जन समुदाय को अकर्मण्यता में ग़र्क़ कर देने वाला अफीम का नशा है' (Religion is the opium of masses) और उन्हें स्कूलों, कलाओं अजायब घरों में बदल दिया है ।

रूस की नई सभ्यता में उसका अडग विश्वास था । अवनति के गढ़ों में गिरकर भारत के सड़ते रहने का कारण वह भारत में मज़हब के मारात्मक नशे की व्यापकता ही समझता था । इस व्याधि को जड़ से दूर करने के लिये उसका मन छुटपटा उठता ।

मज़हब और उसके चिन्हों के प्रति उसकी वितृष्णा इतनी बढ़ गई कि उनकी छाया भी उसे असह्य थी । शिखा-सूत्र वह छोड़ ही चुका था, अब उसे धोती में भी साम्प्रदायिकता की झलक दिखाई देने लगी । उसने उसे भी छोड़ निकर पहनना शुरू कर दिया । मज़हब का इतना भयंकर शत्रु होते हुये भी वह प्रयाग अर्धकुम्भी पर गया था—परलोक प्राप्ति के लिए नहीं बल्कि परलोकपरायण जन समूह की मूर्खता देखने के लिये ।

दोपहर का समय था । वह अपने साथियों सहित त्रिवेणी से लौट रहा था । उसी समय देखा, एक औरत भीड़ से ज़रा परे खड़ी मुँह छिपाये फूट-फूटकर रो रही है । उस गरीब हिन्दू स्त्री ने कुछ संकोच से तीनों की ओर देखकर कहा कि वह अपने साथियों से बिछुड़ गई है,

कोई उसे उसके आदमियों के पास पहुँचा दे, नहीं तो वह भटक-भटक कर मर जायगी, मुसलमान गुण्डे उसे सुबह से परेशान किये हैं ।

पन्ना ने कहा—यह देखो मज़हब की महिमा । यह औरत यहाँ पर-लोक कमाने आई है और परगडों और गुण्डों के हाथ अपना यह लोक भी खोया चाहती है । ताज्जुब नहीं जो प्राण भी खोये ।

अपने दोनों साथियों की अपेक्षा पन्ना के दिल में अधिक सहानु-भूति थी । उसने औरत से पूछा—‘तुम्हारे आदमी कहाँ ठहरे हैं ?’

आँखें पाँछते, पाँछते औरत ने सिसक कर उत्तर दिया—‘वहाँ धर्मशाला में ।’

धर्मशाला का नाम पूछने पर उसने धबराकर कहा—धर्मशाला का नाम तो वह नहीं जानती, धर्मशाला बहुत बड़ी है और बाजार में है ।

‘परलोक की कामना से पागल, स्वार्थी भीड़ में, जहाँ प्रत्येक दूसरों को धक्का देकर स्वर्ग में स्थान पाने के लिए विह्वल है, या उचकके आततायी भोले-भालों का आखेट करने की ताक में फिर रहे हैं, इस अबला की क्या अवस्था होगी?’ यह सोच पन्ना का मन पिघल गया । उसने सोचा, इन लाखों धर्मध्वजियों की अपेक्षा वह स्वयं कहीं अधिक पुण्यात्मा है जो निस्वार्थ भाव से एक अबला की सहायता करने के लिए कष्ट उठाने को तैयार है । वह ज़रूर उस औरत को उसके आदमियों से मिला देगा । न हो वह उसे धर्मशाला-धर्मशाला घुमाकर सभी धर्मशालायें दिखा देगा ।

वह उसे उदासियों के धर्मशाला में ले गया परन्तु वहाँ उस औरत का डेरा न मिला । उसने सोचा औरत बेचारो पैदल कहाँ तक चलेगी ? एक टाँगा उसने किराये कर लिया और उसे स्टेशन की धर्मशाला ले गया । परन्तु वह धर्मशाला भी उस औरत ने नहीं पहचानी । इसके बाद दूसरी, फिर तीसरी, चौथी.....कितनी धर्मशालाएँ वे घूम चुके; कुछ पता न लगा और सूर्यास्त हो चला ।

ताँगे वाले ने कहा, उसका घोड़ा सुबह से जुता है, थका और भूखा है। आखिर उसे खोलना भी है। ताँगा छोड़ वह औरत को पैदल ही ले चला। मन में सहानुभूति और सेवा का प्रचुर भाव होते हुए भी वह प्रबुध धराने लगा—यदि कोई ठिकाना न मिला तो वह इस औरत को वहाँ रखेगा ?

आखिर उसे एक उपाय सूझा। स्त्री से बोला—‘चलो तुम्हें सेवा-समिति में पहुँचा दूँ, वे लोग तुम्हें तुम्हारे शहर और तुम्हारे घर तक पहुँचा देंगे।’

इधर इतनी देर तक ताँगे पर पन्ना के साथ घूमने के बाद ज्यों-ज्यों पन्ना की व्याकुलता बढ़ती गई, स्त्री की घबराहट मिट एक प्रकार की तापरवाही आती गई।

सेवा-समिति में पहुँचाये जाने की बात सुन स्त्री का रूप एकदम बदल गया।

आँखें निकाल, आवाज़ को ऊँचा कर और दायें हाथ से पन्ना की कलाई थाम औरत ने कहा—“हैं ? अब कहाँ जा रहा है ? मुझे बेर बार किया, अब मुझे धोखा देकर कहाँ जाना चाहता है ? चाहे मैं मर जाऊँ अब तुझे मैं कभी नहीं छोड़ सकती।”

स्त्री की बात सुन पन्ना के सिर पर बिजली गिर गई। भौंचक हो वह उसके मुँह की ओर देखने लगा।

स्त्री ने पन्ना की कलाई न छोड़ी बल्कि और स्वीस निकाल कर बोली—“ओ हो, अब कैसा भोला बन गया, मेरा सारा जेवर खाकर ?”

पन्ना के रहे सहे होश उड़ गये।

मर्द औरत में भगड़ा होता देख आसपास से लोग कौतूहलवश इकट्ठे होने लगे। लोगों का तमाशा बनकर और बुरी गत कराने की अपेक्षा औरत से एकान्त में भगड़ना उसने अच्छा समझा। उसे ले वह एक ओर चल निकला। वह परेशान था, परोपकार करने आकर

वह अच्छी मुसीबत में फँसा । क्या उसे औरत भगाने के अपराध में जेल काटनी पड़ेगी ?

औरत चलती जारही थी । ज़बान उसकी एक क्षण को भी थमना न चाहती थी । वह एक ही टेर लगाये थी—“मेरा हज़ार रुपये का ज़ेवर खालिया, अब गंगा नहलाने के बहाने लाकर मुझे यहाँ छोड़ना चाहता है । मेरी इज्जत भी ली, मेरा रुपया भी लिया ।”

पन्ना का सिर घूम रहा था । वह उस औरत के साथ घूमता-घूमता भी कटरा मुहल्ले में आ पहुँचा ।

एक तरफ़ हलवाई की दुकान से ताज़ी पूरियाँ निकलने की सुगन्ध उड़ रही थी । औरत से न रहा गया । कड़क कर बोली—“सुबह से घूमते-घूमते पैर रह गये, पेट में एक दाना नहीं गया । कुछ खाने को देगा या भूखा मारेगा ?”

पन्ना पर औरत का आतंक बैठ गया था । उसने उसकी ओर देख कर कहा—“क्या खायेगी ?”

औरत ने भुंफुला कर कहा—“पूरी ले ले, और क्या चौका लगाने बैठूँगी ? मरने को तो जगह है नहीं ।”

‘चौका’ का नाम सुनते ही पन्ना का मस्तिष्क साफ़ हो गया । इस शब्द को लेकर उसने कितनी ही बहसों की थीं । उसने भी गरम होकर जवाब दिया—“पूरी खायगी, ऐसी साहूकार की बेटी है न ! जो खाऊँगा सो तू खायेगी, चल नानवाई के यहाँ से रोटी गोश्त ले दूँ ।”

औरत पर मानो घड़ों पानी पड़ गया । पल भर पन्ना के मुँह की ओर देखकर, वह राह चलतों को पुकार कर चिल्लाने लगी—“अरे देखो कोई ! यह मुंडचिरा मुसलमान मेरे पीछे पड़ा है ।”

सब कुछ करके भी मुसलमान के साथ रह अपना धर्म गँवाना औरत को मंजूर न था ।

कुछ लोगों ने पुकारा—‘कौन है ?’

पन्ना सिर पर पैर रख भाग खड़ा हुआ ।

एक गली में किसी को अपना पीछा न करते देख उसने दम लिया ।
माथे का पसीना पोंछ गली के दूसरे सिरे पर पहुँच एक ताँगे वाले को
बुला वह अपने डेरे पर पहुँचा ।

×

×

×

आधी रात में बरबाद सी हालत में उसे लौटते देख साथियों ने
पूछा—‘क्या हुआ ?’

कम्बल में मुँह लपेटते हुए पन्ना ने कहा—‘ऐसी-तैसी !’

साथियों ने पूछा—‘आखिर कुछ तो कहो !’

पन्ना ने उत्तर दिया—‘सब कुछ कहूँगा परन्तु अब मज़हब के
खिलाफ़ एक शब्द न कहूँगा.....आज उसी से जान बची ।’

कमफल

बहुत जाड़ा था । बहुत ज़ोर का पानी पड़ रहा था । बाज़ार और गली क़चे सूने पड़े थे । बिना बहुत जरूरी काम के कोई मकान के बाहिर निकलना न चाहता था ।]

जिन लोगों के मकान नहीं, सर्दी और तपिश में जिन लोगों के लिए 'ईश्वर' का आकाश या म्युनिसिपैलिटी के लगाये पेड़ ही आश्रय हैं, वे लोग भी जहाँ-तहाँ भले लोगों के मकान या हवेलियों की आड़ में छिपकर हवा-पानी से सिर बचाने की कोशिश कर रहे थे । सेठजी की हवेली के लम्बे-चौड़े सूने बरामदे में समीप के नीम के नीचे से एक बेघर बार का 'जीव' सरक आया । उसके बाद दूसरा, तीसरा, इसी तरह छः सात 'जीव' आ जमा हुए । बरामदे के दाईं ओर के कोने में जहाँ बौछार न आसकने से जगह बिल्कुल खुश्क थी, वहाँ पहले आकर जिसने अपना टाट का टुकड़ा बिछा लिया था उसे दूसरे 'जीवों' का वहाँ पर आकर घपला करना असह्य हो रहा था । लेकिन बाद में आये हुआओं के लिये तेज़ हवा और बौछार से बचने की इच्छा न करना भी असम्भव था । वे पहिले आये व्यक्ति के अधिकार को, उसके पीछे किसी प्रकार की शक्ति न होने के कारण, मानने के लिए तैयार नहीं थे । इन बेवकूफों को इतनी तमीज़ नहीं थी कि यदि दखल के अधिकार को न माना जाय तो जमींदारी और सम्राटों की सत्ता भी नहीं रह सकती ।

भगड़ा होने लगा । चीख-पुकार मचने लगी । माँ बहन को ले तरह-तरह की ललकार सुनाई पड़ने लगी । इस सब के ऊपर गोद में छिपे,

सर्दी और भूख से बिलखते बच्चे अपनों पर होते अत्याचार के प्रतिकार में चिल्लाने लगे ।

सेठ जी अंगीठी के सामने बैठे जरूरी कागजात देख रहे थे । शोर से उद्विग्न हो उन्होंने द्वारिका धीमर को ललकारा—“यह सब क्या घपला हो रहा है ?”

अनिच्छा से रजाई छोड़कर द्वारिका ने बरामदे में भाँका । क्रोध में उसने डगडा उठा और गालियाँ देते हुए उन सब अवाछनीय बद-माशों को वहाँ से खदेड़ दिया !

कोई भागकर किसी बन्द दुकान के छजे के नीचे जा बैठा ; कोई किसी ज्योढ़ी की आड़ में हो गया । लेकिन बिन्दी की टोंगों में इतना जोर बाक्री न था । तिसपर गोद के बच्चे का बोझ । टाट के टुकड़े में लिपटे बच्चे को पेट से चिपकाये वह फिर दस कदम पर नीम के पेड़ के तने से सटकर जा बैठी ।

×

×

×

अधेरा खूब घना हो गया था ; पर पानी के रुकने का कोई आसार न था । तिस पर पछुवा खूब तेज बह रही थी । रोते-रोते बिन्दी के बच्चे का गला रह गया, पर उसकी हिचकी बन्द न होती थी । पिछली सौंभ से बच्चे के मुँह में कुछ नहीं गया था । वारिश के मारे कोई ‘भला आदमी’ घर से बाहर निकलता नहीं, बिन्दी को कोई पैसा-धेला कहाँ से मिलता ? मुँह में अन्न गये बिना उसकी छाती में दूध कहाँ से आता ? बच्चा अपने एक निर्बल दाँत से छाती को काट कर पेट भर लेने की कोशिश दिन भर कर चुका था । न छाती में ही कुछ था और न दाँत में शक्ति ही । तिस पर वह जाड़ा जो इंट-पत्थर की दीवारों को भेद, मोटे-मोटे लिहाफों के भीतर पहुँच, शरीर के रोंगटे खड़े किए देता था ।

बिन्दी का बच्चा रह-रहकर चिड़िया के बेपर चूजे की तरह मुँह बा देता । न उसमें से रोने की ही आवाज़ निकल पाती थी न उसमें जाने

के लिए ही कुछ था। बिन्दी अधीर हो, पुचकार-पुचकार उसे अपने शरीर की गरमी से गरम रखने की चेष्टा कर रही थी। यदि माँ के स्नेह में बच्चे को जाड़े से बचा लेने की शक्ति होती, यदि उसमें बच्चे का पेट भर देने की सामर्थ्य होती ?

बिन्दी न डाक्टर थी न वैद्य, लेकिन बच्चे के दरद को माँ का हृदय अनुभव न करेगा तो कौन करेगा ? जब म्युनिसिपैलिटी के घण्टाघर ने इस हवा-पानी में भी भले आदमियों को यह सूचना देनी जरूरी समझी कि दस बज गये हैं, सोने का समय हो गया है, उस समय बिन्दी को सहसा ऐसा जान पड़ा, मानों उसकी गोद सूनी हो गई। उसकी गोद का बोझ बे मतलब हो गया। उसके हृदय से एक मर्म भेदी चीख निकल पड़ी वह सिर और छाती पीट-पीट रоне लगी। सुनसान रात में आराम के वक्त उसके क्रन्दन से भले आदमियों की नींद खराब न हो इसलिए पछुवा उसकी चीखी पुकार को उड़ाये लिए जा रही थी, पानी उसे दबाये दे रहा था।

X

X

X

नीम के ठीक नज़दीक, ऊपर दुमंजिले पर जो खिड़की थी, वहीं सेठानी जी के सोने का कमरा था। सेठानी जी नींद न आने के कारण दुखित हो नींद की प्रतीक्षा कर रही थीं। समीप ही उनकी बिटिया सो रही थी। कुछ दिन से बीमार सी रहने के कारण बिटिया दुबला गई थी। गाल ढीले पड़कर आँखें कुछ-कुछ दिखाई देने लगी थीं। सेठानी जी बिटिया की कमजोरी के कारण परेशान रहतीं। नीचे से बेवक्त रोने की आवाज उन्हें बहुत बुरी मालूम हुई। चिन्ता कर उन्होंने पुकारा—‘अरे कोई है, देखो नीचे यह कौन स्थापा डाल कर अपनों को रो रहा है ? बिटिया की जरा आँख लगी है। उसे क्या सोने नहीं देगा ?’

माँ की कोमल आवाज से नन्हीं की नींद उचट गई। उसने पूछा—‘क्या है माँ ?’

माँ ने पुचकार कर कहा—‘कुछ नहीं मेरी रानी बेटी सोजा ।’

बेटी ने पूछा—‘कोई रोता है क्या माँ ?’

माँ ने बेटी को पुचकारा—‘तू सोजा बेटी, कोई राँड़ नीचे बाजार में अपने करमों को रो रही है । तू सोजा, मैं अभी भेज कर उसे निकलवाये देती हूँ ।’

नीचे से रोने की आवाज़ आ रही थी । सेठानी जी ने उन्हें और उनकी बिटिया को यां दुख देनेवाले के विरुद्ध भगवान को दुहाई दी और द्वारिका को पुकारा ।

नीम की तरफ से द्वारिका की ललकार सुनाई दी—‘चल हट राँड़ यहाँ से, तमाशा करने आई है ! नहीं एक डण्डे से सिर तोड़ दूँगा ।’

नन्हीं ने माँ को सम्बोधन कर कहा—‘यह कोई बड़ी पापिन होगी माँ जो ऐसे रो रही है ।’

‘और क्या बेटी’ कहकर माँ ने बेटी के धर्मभाव का अनुमोदन किया और उसे सुलाने के लिए उसका सिर सहलाने लगी ।

अपने बेमतलब बोझ को छाती से चिपटाये बिन्दी रोती, चीखती दूर चली गई । ऊपर लिहाफ में लेट कर सेठानी जी भगवान का नाम लेती हुई भगवान से भिक्षा माँगने लगीं—‘मेरी बेटी का कष्ट दूर करो भगवान !.....जिसने बेटी की नींद बिगाड़ दी उसका सत्यानाश हो ।’



दृष्टि—

मेरी स्त्री का सिद्धान्त है, संसार के सभी महापुरुषों की महानता का श्रेय है, उनकी धर्म-पत्नियों को । मैं एक महापुरुष नहीं बन सका, इसका कारण अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में चाहे मेरी सैंकड़ों न्यूनताएँ हों परन्तु श्रीमती जी की दृष्टि में केवल एक ही कारण है और वह यह कि मैं पूर्ण रूप से श्रीमती जी का अनुगत—जैसा कि उनकी राय में होना चाहिए—नहीं हो सका ।

जब श्रीमती जी ने हम लोगों के मकान के ऊपर के दो कमरे चित्रा को रहने के लिए देने का प्रस्ताव किया तो उसमें मुझे कुछ एतराज न था बल्कि प्रसन्नता ही थी । चित्रा बंगाली युवती थी । इसलिए कुछ तो कौतुहल और कुछ उसके भोले चेहरे और आयत लोचनों के समीप रहने से किसी दिन उसी के मुख से उसके जीवन की मर्म-कथा सुनने की आशा थी ।

प्रसन्नता प्रकट न करने का यह भी कारण था कि श्रीमती जी किसी आशंका से चित्रा को स्थान देने के लिए निरुत्साहित न हो जाँय । उन के प्रस्ताव पर इतना ही कहा—‘क्या झंझट सिर लोगी ; उसके देवर हैं, जेठ हैं, शायद माँ-बाप भी हों । जिसका अपने घर निर्वाह न हुआ, वह तुम्हारे घर ही क्या शान्ति से रह सकेगी ।

मेरी आशा के अनुकूल भ्रमक कर श्रीमती बोलीं—‘यही तुम्हारे उदार विचार हैं ? तुम नहीं जानते वे सब लोग कितने कट्टर हैं ? जब ‘रतन’ के जीते जी उन लोगों ने बेचारी से सीधे मुँह बात नहीं की तो अब उसे क्या भेलेंगे ? वह तुम्हें क्या तकलीफ़ देगी ? ऐसी

सुशील लड़की है बेचारी ! यहाँ रहेगी उसका मन लगा रहेगा, तुम्हारी 'किरण' को भी दो अच्छर बतायेगी, तुम्हारा क्या हर्ज है ?

पराजय स्वीकार कर लिया—'जैसे तुम्हारी इच्छा ।'

मुझ पर भुँझला सकने का और मुझे उचित मार्ग पर ला सकने का सुयोग पा श्रीमतीजी को सन्तोष हुआ । चित्रा हमारे यहाँ आकर रहने लगी ।

रतन रिश्ते में मेरा साला था । वह भी शायद श्रीमती जी के मामा का रिश्ते में भाज्जा होने के नाते से । तीन-चार बरस वह कानपुर में व्यापार के सिलसिले में रहा था । वहीं उसने एक युक्तप्रान्तवासी बंगला युवती से गंधर्व-विवाह—जिसे आजकल की कचहरी की भाषा में सिविल-मैरेज कहते हैं—कर लिया था । लाहौर सपत्नीक लौटने पर हम लोगों की विरादरी ने उसका स्वागत नहीं किया ।

न करे ! रतन जवाँ मर्द था । उसने किसी की कुछ परवाह न कर विरादरी की छाती पर मूँग दली । एक किराये का मकान ले, अपना सुहावना जगत बसा लिया ।

रतन से मेरा कुछ विशेष सरोकार न था । परन्तु इस जोड़ी का निगूढ़ प्रेम और आत्मनिर्भरता देख उनके प्रति सहानुभूति थी । वे कभी-कभी हमारे यहाँ आते-जाते परन्तु हाय भाग्य ! रतन बीमार हुआ, हालत खराब हुई, मर गया ।

श्रीमती जी का कहना है, बीमारी के छः मास चित्रा ने रतन की वह सेवा की कि कोई क्या करेगा ।

जितना देख पाया उससे यह कह सकता हूँ, लड़की के व्यवहार में सरलता और शालीनता भरी थी । यहाँ तक कि श्रीमती जी को भी उसमें अभिमान की गंध न आई । उनके मुख से मैं सदा ही चित्रा की प्रशंसा सुन पाता और किरण तो मुझ से कई दफ्ते कह चुकी थी—'पिता जी हम मौछी की बेटी हैं ।'

×

×

×

एक दिन बिलकुल एकान्त पा, श्रीमती जी ने मेरे कान के समीप मुख कर कहा—‘देखो तो, आखिर हरबात की एक सीमा होनी चाहिए।’

उसी तरह पूछा—‘क्या बात है?’

श्रीमती जी ने उत्तर दिया—‘मैं तो हैरान हूँ, मैं स्वयं यह नहीं चाहती कि विधवायें सदा शोक-वेश बनाकर रहें परन्तु यह चित्रा तो हद्द कर रही है। आखिर वह विधवा है। नहीं रहा जाता तो विवाह ही करले। उसे डर किसका है। बिरादरी का भी झंझट नहीं।’

कुछ न समझ पूछा ? ‘क्यों बात क्या है। उसे कभी सादगी से बाहिर कदम रखते नहीं देखा। हाँ, अलवत्ता सफ़ाई और ढंग से ज़रूर रहती है।’

श्रीमती जी ने मेरे इस नम्र विरोध से खीझकर जवाब दिया—

‘हाँ तुम बहुत जानते हो, न ? मैंने कई दफ़े देखा है, आइने के सामने घण्टों बाल काढ़, सिंदूर डाल, बेंदी लगा, साड़ी कंधों पर रखे बैठी अदा से मुस्कराया करती है। कई दफ़े मैं ऊपर गई और उसे इस तरह देख लौट आई। कई दफ़े जाँचने के लिए मैंने किरण को भेजा—जा देख मौसी क्या कर रही है ? उसने भी आकर कहा—मौसी बाल काढ़ रही हैं, बोलती नहीं।’

रहस्य को न समझ टाल गया—‘होगा, पर उसमें हाव भाव की चंचलता कभी देखी नहीं।’

पर-नारी की प्रशंसा करने की मेरी भूल का परिणाम तुरन्त मेरे सामने आगया। श्रीमती जी ज़रा तीव्र स्वर से बोलीं—

‘मैं यह तो नहीं कहती कि वह गली-गली लोगों को रिझाती फिरती है। अकेले छिपकर जो वह घण्टों आइने के सामने झूमा करती है, उसे लुकाने छिपाने की क्या ज़रूरत ? कोई रोकता है?’

पूछा—‘आखिर कुछ तो मतलब होगा ?’

‘मतलब क्या’ श्रीमती जी ने कहा—‘रूप का गुमान है ।’

मुस्कराकर जवाब दिया—‘रूप, अलबत्ता कुरूप नहीं है, लेकिन तुम्हारे सामने वह क्या गुमान करेगी ?

श्रीमती जी की आँखों में चमक आगई, हृदय की उदारता पिघल पड़ी, बोलीं—‘वह बेचारी अपना रूप किसे दिखायेगी ? अकेले में जरा दिल बहला लेती है क्या हर्ज है ।’

×

×

×

उपरोक्त चर्चा को भूल चुका था । एक रोज़ किरण चित्रा के कमरे से एक आइना लिए हुए आई और कहने लगी—‘माँजी, मौछी का छीछा हम लेंगे ।’

उसकी माँ ने धीरे से मेरे कान में कहा,—‘इसी आइने में देख वह सिंगार किया करती है—वह सिंगार में लगी होगी, यह शैतान आइना उठा लाई ।’

प्रकाश में किरण को डाँटकर श्रीमती जी बोलीं—‘शैतान ! मौसी का शीशा क्यों उठा लाई ।’

दूसरे साँस में पुचकार कर कहा—‘आ रानी बेटी, मौछी का शीशा दे दे, मैं तुम्हें इससे अच्छा ला दूँगी ।

किरण अपनी राय बदलने के लिये तैयार न हुई । आइना दरअसल सुन्दर था । पान की शकल का या जिसे ‘हार्टशेप’ कहते हैं । कछुए की खपड़ी में जड़ा हुआ, दल खूब मोटा और पानी साफ़ ।

ऊपर से चित्रा ने आ, मुस्कराकर कहा—‘आओ बेटी, हम तुम्हें इससे अच्छा शीशा दें ।’

किरण पर इस बात का भी कुछ असर न हुआ । आइने को दोनों हाथों से छाती से चिपकाकर वह ठुमकती हुई मेरी कुर्सी के पीछे हो गई । खुद भी समझाया, पर कुछ असर न हुआ ।

चित्रा बोली—‘किरण अपने आपही हमें शीशा दे आयेगी । आओ किरण चलें’ और वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी ।

चित्रा गई ही थी कि किरण के हाथों से शीशा फिसल पड़ा और फर्श पर गिर उसके टुकड़े बिखर गये । किरण डर गई, उसकी माँ का चेहरा फ़क हो गया । श्रीमती जी ने मेरी ओर देखकर कहा,—‘अब !’

मैं स्वयं चिन्तित था । उपाय केवल एक था कि तुरन्त वैसा ही आईना बाज़ार से लाया जाय परन्तु वह कहाँ का बना है और कहाँ मिल सकेगा ? यह देखने के लिए उसके कछुए की खपड़ी के फ्रेम को उठाया । उस पर हिन्दी में कुछ गुदा हुआ था । पढ़कर मैं हतचेतन-सा रह गया ।

किरण की माँ को भी दिखाया उस पर गुदा था,—‘यह आईना मेरा हृदय है । जब तुम इसमें अपनी सुन्दर छवि देखो, समझना मेरे हृदय में बसी अपनी मूर्ति को देख रही हो—रतन’

किरण की माँ की आँखों में आँसू आ गये । मैंने सोचकर कहा—‘इसीलिये वह मुस्कराकर, सिंदूर लगाकर सदा इस आईने के सामने जाती थी ।’

उपाय कुछ नहीं था । नहीं जानता किन शब्दों में श्रीमती जी ने चित्रा से ज़मा माँगी और अनुताप प्रकट किया ।

चित्रा इस दिन के बाद से बहुत उदास रहने लगी । यहाँ तक कि किरण को गोद में लेकर भी वह न हँस पाती । जब किरण उससे जा चिपटती तो वह केवल उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेर देती ।

×

×

चित्रा बीमार सी रहने लगी । वह बिस्तर पर नहीं लेटी परन्तु सूखती गई । एक दिन बस जाने के लिये तैयार हो बैठी ।

उसने कहा—‘अमुक जगह लड़कियों की पाठशाला में जगह

खाली है। उसमें दिन बिताने की सहूलियत हो सकेगी। बैठे-बैठे दिल बहुत धबराता है।’

प्रति सोमवार को श्रीमती जी उसे पत्र लिखती थीं और उसका भी उत्तर आता। इस तरह पन्द्रह पत्र आये सोलहवें का उत्तर नहीं आया।

प्रायः तीन सप्ताह की देर से एक बड़ा सा लिफाफा—सम्राट के कार्य विधान पर On His Majesty's Service आया।

खोलने पर उसमें श्रीमती जी का लिखा चित्रा के नाम का पत्र हस्पताल को रिडाइरेक्ट किया हुआ निकला और एक पत्र सिविल-सर्जन के हस्ताक्षर से उसके साथ था।

साहिब ने लिखा था—

‘ति.....को ‘श्रीमती चित्रा रतन’ हस्पताल के स्त्री भाग में दाखिल हुई। उन्हें हृदय रोग की बहुत बढ़ी हुई शिकायत थी। अठारह दिन बीमार रहकर उनका देहान्त हो गया। ‘श्रीमती चित्रा रतन’ ने अपने किसी सम्बन्धी या मित्र का पता नहीं दिया था इसलिये सूचना दिये जाने का कोई उपाय न था। उनका शव म्युनिसिपैलिटी को सौंप दिया गया था। मृतात्मा के सम्बन्धियों के प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है।’
सिविल-सर्जन

×

×

×

उस रोज़ फिर हमें दर्पण की बात याद आई और उसके साथ ही उस दर्पण के सामने एकान्त में चित्रा के सिंगार की भी बात याद आई।

परलोक

मल्ली की माँ ने कहा—“हाँ हाँ, बाबा ! ऐसा लड़का नहीं देखा ।”

मल्ली की माँ का कहना ठीक है । वह इसी प्रतीक्षा में है कि किस दिन मट्टू को छठा बरस लगे और वह उसे स्कूल भेजकर चैन की साँस ले ।

मट्टू पाँचवें बरस में है और मल्ली आठवें में परन्तु उसे हर बात में भाई से हार माननी पड़ती है, उसका अत्याचार सहना पड़ता है ।

माँ का आँचल धरे मट्टू किसी बात के लिए जिद कर रहा था और मल्ली छत पर खड़ी पतंगों का तमाशा देख रही थी । एक पतंग आकर गिरी । उल्लास से कुलक कर मल्ली ने पुकारा—‘अहा जी पतंग’ !

आवाज़ सुनते ही मट्टू माँ का आँचल छोड़, गोली की तरह ऊपर पहुँचा ‘मैं लूँगा, मैं लूँगा’ कह कर वह बहिन से पतंग छीनने लगा । मल्ली पतंग को दोनों हाथों से सिर के ऊपर थाम कर सहायता के लिए चिल्लाने लगी—‘माँ माँ, मट्टू पतंग छीन रहा है ।’

चीखो-पुकार की कुछ भी परवाह न कर मट्टू मल्ली की धोती और चोटी खींच-खींचकर उसे हाथ नीचे करने के लिए विवश करने लगा । मल्ली का बावेला सुन, माँ ने पुचकार कर मट्टू को नीचे आने के लिए कहा, बहिन को तंग न करने का उपदेश दिया फिर पीटने की धमकी दी ।

इस सब की कुछ भी परवाह न कर मट्टू पतंग लेने के लिए मल्ली के बाल नोचने लगा, उसके बदन में चिकोटियाँ भरने लगा ।

आखिर मल्ली रो पड़ी । माँ ने पुचकार कर कहा—‘मेरी रानी बेटी

तू दे दे, पतंग इस दुष्ट को दे दे ! तू मेरी रानी बेटी है, यह बड़ा चण्डाल है ! अच्छा आजाने दे इसके पिता जी को, इसे ऐसा पिटवा-ऊँगी कि सारा बदन सूज जायगा । शाबाश, यह इसे दे दे । तू बड़ी रानी है । तुझे बाज़ार से नई बड़ी सी पतंग मंगवा दूँगी ।

मल्ली ने माँ का कहना मान पतंग दे दी । माँ ने कहा—‘मल्ली बड़ी अच्छी है, इसे रबड़ की गुड़िया ले दूँगी’ । लड़की रोती हुई माँ के पास आ बैठी और मट्टू उछल-उछल कर पतंग फाड़ने लगा ।

×

×

×

एक दिन नवम्बर के महीने में जगन ने बेमौसिम के बहुत बढ़िया चार आम भेजे । मट्टू टोकरी देखते ही उसे पकड़ बैठा । माँ ने हज़ार यत्न किया कि लड़के का ध्यान बँट जाय । वह आमों को छिपादे और मल्ली के स्कूल से लौटने पर दोनों को एक साथ दे । सब छल-बल कर माँ हार गई । मट्टू ने टोकरी को तब छोड़ा जब दोनों हाथों में एक एक आम ले लिया । शाम को मल्ली के स्कूल से लौटने पर बड़े यत्न से रखा हुआ एक आम माँ ने निकाल उसे दिया और कहा—‘जा उधर जाकर खा । कहीं वह शैतान न आ जाय ।’

परन्तु मट्टू से मल्ली को कौन बचा सकता है ? न जाने कहाँ से भपटता हुआ वह आया और आम मल्ली के हाथ से छीन लिया ।

मल्ली चिल्ला कर रोने लगी । माँ ने रसोई में से बहुत डांटा, धमकी दी, रस्सी से बाँध कर पीटने को कहा, फटकारा, जितनी देर में वह घटनास्थल पर पहुँची, मट्टू ने हाथ मुँह और कपड़े सब खराब कर आम समाप्त कर दिया । मल्ली करुण स्वर में रोने लगी ।

सुन कर मुझे भी बहुत दया आई । हमने मल्ली को बहुत प्यार किया, पुचकारा और बहुत सी मिठाई और फल ला देने का वायदा कर उसे बहला दिया ।

अगले दिन मल्ली गुड़िया का गीत गा-गाकर अपनी नई गुड़िया

को रंगीन पोशाक पहना रही थी। मट्ठू को गुड़िया पसन्द आ गई। दोनों हाथों से गुड़िया को छाती से लगा मल्ली ने गुड़िया देने से इन्कार कर दिया। मट्ठू ने धमाधम मल्ली की पीठ पर घूँसे जमाने शुरू कर दिये।

रोना सुन माँ झपटी हुई आई। यह देख मट्ठू फर्श पर लोट गुड़िया लेने के लिए ज़िद करने लगा। समझाने-बुझाने का कुछ फल न हुआ, आखिर गुड़िया मट्ठू को दिला दी गई और मल्ली को नये-नये खिलौने मगा देने का वायदा कर बहला दिया गया।

×

×

×

मल्ली सब अन्याय अत्याचार सहती है, उसे मिलता है केवल वायदा 'आश्वासन'। मट्ठू वायदे या आश्वासन की कुछ चिन्ता नहीं करता जो देखता है तुरन्त झपट लेता है। वह मौज करता है और मल्ली बड़ी-बड़ी कातर आँखों से ताक-ताककर आशा करती रहती है।

मैं सोचता हूँ इन दोनों में कौन सफल है ?

मल्ली की माँ कह रही थी जो इस शैतान को स्कूल में भरती करादो—

हँसकर मैंने कहा—'अभी रहने दो, कमजोर हो जायगा।' प्रत्युत्तर में उसने कहा 'ओफो ऐसा शैतान लड़का !' और सुडौल लड़के को पेट से जन्म देने के अभिमान में उसका हृदय फूल उठा।

उसी समय नीचे पुकार सुन उसने कहा—'हा, बाबा एक तो इन फक्कड़ों के मारे बैठना नहीं मिलता। ननकू कहदे—अभी जाय, हाथ खाली नहीं है।'।

ननकू ने मालकिन का संदेशा छत पर से ही फकीर को सुना दिया। उसके उत्तर में फकीर ने नीचे से कहा—'माई तेरे मालिक की खैर, दूध पूत की खैर ! यहाँ ताँबे का पैसा दे, रब तुझे सोने का पैसा देगा।'।

दूधपूत की खैर की बात सुन मल्ली की माँ की कठोरता पिघल रही थी ताम्बे के पैसे के बदले सोने के पैसे की बात से वह बह

चली । बोली, 'भाई ननक, अभी बैठी हूँ, जा उसकी भोली में चुटकी डाल आ ।'

देखता हूँ, मेरी आठ बरस की भोली लड़की ही भविष्य की आशा-सांत्वना पर नहीं जीती । उसकी चतुर पक्की माँ भी भविष्य की सांत्वना का भरोसा रखती है । फकीर को चुटकी देती है, ब्राह्मण भोजन कराती है, अनाथालय को चन्दा देती है, व्रत रखती है । मल्ली की माँ ही क्या ; भारतवासी ही भविष्य की आशा पर जीते हैं ।

परलोक में सुख भोग करेंगे, अगला जन्म सुखमय होगा, इसी आशा में हम इस जीवन की कर्दय अवस्था को सह जाते हैं । सांसारिक पदार्थों में आसक्त होने से परलोक प्राप्ति में बाधा होगी, इसलिये हम उस ओर ध्यान नहीं देना चाहते । मन में स्वभावतः स्मृद्धि की इच्छा होती है परन्तु हम उसे समझाते हैं, लिस होना अच्छा नहीं । मार पड़ती है तो कहते हैं—भगवान देखते हैं, समझेंगे ।

देखता हूँ यह सम्पूर्ण जाति ही मल्ली की भौंति भविष्य की आशा पर जी रही है । दूसरे लोग (यूरोप) मट्टू की भौंति आज के मतलब की बात सोचते हैं ।

सोचता हूँ—भविष्य के हज़ारों वायदों को पाकर भी जैसे मल्ली मट्टू की अपेक्षा कभी अधिक सफल न हो सकेगी, उसी तरह भगवान् भी भारतवासियों की भविष्य-आशा का क्या करेंगे ?

यूरोप को देख उनका मन प्रसन्न ही होगा । जिस तरह हम मट्टू को देखकर कुछ नहीं कह सकते, उसी तरह भगवान् यूरोप को कहेंगे—'शाबाश बेटे ।' और भारत को पुचकार कर कहेंगे—'घबराओ नहीं, तुम्हारे लिये परलोक है ।'

लेकिन परलोक में भी—अगर परलोक है—यही भगवान् होंगे और यूरोप होगा मट्टू और हम होंगे मल्ली ।

दुख—

जिसे मनुष्य सर्वापेक्षा अपना समझ भरोसा करता है, जब उसी से अपमान और तिरकार प्राप्त हो, मन वितृष्णा से भर जाता है; एकदम मर जाने की इच्छा होने लगती है; इसे शब्दों में बता सकना सम्भव नहीं।

दिलीप ने हेमा को पूर्ण स्वतंत्रता दी थी। वह उसका कितना आदर करता था; कितनी आन्तरिकता से वह उसके पति अनुरक्त था? बहुत से लोग इसे 'अति' कहेंगे। इस पर भी जब वह हेमा को सन्तुष्ट न कर सका और हेमा केवल दिलीप के उसकी सहेली के साथ दूसरे 'शो' में सिनेमा देख आने के कारण रात भर रूठी रहकर सुबह उठते ही माँ के घर चली गई, तब दिलीप के मन में क्षोभ का अंत न रहा।

सितम्बर का अन्तिम सप्ताह था। वर्षा की ऋतु बीत जाने पर भी दिन भर पानी बरसता रहा। दिलीप बैठक की खिड़की और दरवाज़ों पर पर्दे डाले बैठा था। वितृष्णा और ग्लानि में समय स्वयं यातना बन जाता है। एक-एक मिनिट गुज़रना मुश्किल हो जाता है। समय को बीतता न देख दिलीप खीझकर सो जाने का यत्न करने लगा। इसी समय जीने पर से छोटे भाई के धम-धमकर उतरते चले आने का शब्द सुनाई दिया। अलसाई हुई आँख को आधा खोल उसने दरवाज़े की ओर देखा।

छोटे भाई ने पर्दे को हटाकर पूछा—'भाई जी, आपको कहीं जाना न हो तो मैं मोटर-साइकल ले जाऊँ ?'

इस विघ्न से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए दिलीप ने हाथ के इशारे से उसे इजाजत दे. आँखें बन्द कर लीं।

दिवार पर टँगे क्लक ने कमरे को गुँजाते हुए छः बज जाने की सूचना दी। दिलीप को अनुभव हुआ—क्या वह यों ही कैद में पड़ा रहेगा। उठकर खिड़की का पर्दा हटाकर देखा, बारिश थम गई थी। अब उसे दूसरा भय हुआ; कोई न कोई आ बैठेगा और अप्रिय चर्चा चला देगा।

वह उठा। भाई की साइकिल ले, गली के कीचड़ से बचता हुआ और उससे अधिक लोगों की निगाहों से छिपता हुआ, वह मोरी दरवाजे से बाहिर निकल, शहर की पुरानी फसील के बाग से होता हुआ मिटो पार्क जा पहुँचा। उस लम्बे चौड़े मैदान में पानी से भरी घास पर पछुवा के तेज़ भोकों में ठिठरने के लिए उस समय कौन आता ?

उस एकान्त में एक बेंच के सहारे साइकिल खड़ाकर वह बैठ गया। सिर से टोपी उतार बेंच पर रख दी। सिर में ठण्ड लगने से मस्तिष्क की व्याकुलता कुछ कम हुई।

खयाल आया, यदि ठण्ड लग जाने से वह बीमार हो जाए, उसकी हालत खराब हो जाए तो वह चुपचाप शहीद की तरह अपने दुःख को अकेला ही सहेगा। 'किसी को' अपने दुःख का भाग लेने के लिए न बुलायेगा। जो उस पर विश्वास नहीं कर सकता जो उसके हृदय की कोमलता को अनुभव नहीं कर सकता, उसे क्या अधिकार कि उसके दुःख का भाग बँटाने आये। एक दिन मृत्यु दबे पाँव आयेगी और उसके रोग के कारण, हृदय की व्यथा और रोग को ले, उसके सिर पर सात्वना का हाथ फेर उसे शांत कर चली जायगी। उस दिन जो लोग रोने बैठेंगे, उनमें हेमा भी होगी। उस दिन उसे खोकर हेमा अपने नुकसान का अन्दाज़ा कर अपने व्यवहार के लिए पछतायेगी। यही बदला होगा दिलीप के चुपचाप दुःख सहते जाने का। निश्चय कर उसने सन्तोष का एक दीर्घ निश्वास लिया। करवट बदल ठण्डी हवा खाने के लिए वह बैठ गया।

समीप तीन फर्लांग पर मुख्य रेलवे लाइन से कितनी ही गाड़ियाँ गुज़र चुकी थीं। उधर दिलीप का ध्यान न गया था। अब जब फ्रंटियरमेल तूफ़ान वेग से, तीव्र कोलाहल करती हुई, गुज़री तो दिलीप ने उस ओर देखा। लगातार फ्रस्ट और सैकण्ड के डिब्बों से निकलने वाले तीव्र प्रकाश से वह समझ गया—फ्रंटियर मेल जा रहा है, साढ़े नौ बज गये।

स्वयं सहे अन्याय के प्रतिकार की एक सम्भावना देख उसका मन कुछ हलका हो गया था। वह लौटने के लिए उठा। शरीर में शैथिल्य की मात्रा बाक़ी रहने के कारण साइकल पर न चढ़ वह पैदल-पैदल बाग़ोबाग़, बादशाही मसज़िद से टकसाली दरवाज़े और टकसाली से भाटी दरवाज़े पहुँचा। मार्ग में शायद ही कोई व्यक्ति दिखाई दिया हो। सड़क किनारे स्तब्ध खड़े बिजली के लैम्प निष्काम और निर्विकार भाव से अपना प्रकाश सड़क पर डाल रहे थे। मनुष्यों के अभाव की कुछ भी पर्वाह न कर, लाखों पतंगे गोल बाँध-बाँधकर, इन लैम्पों के चारों ओर नृत्य कर रहे थे। सौर जगत के यह अद्भुत नमूने थे। प्रत्येक पतंगा एक नक्षत्र की भाँति अपने मार्ग पर चक्कर काट रहा था। कोई छोटा, कोई बड़ा दायरा बना रहा था। कोई दाँये को, कोई बाँये को, कोई आगे को, कोई विपरीत गति में, निरन्तर चक्कर काटते चले जा रहे थे। कोई किसी से टकराता नहीं। वृक्षों के भीगे पत्ते बिजली के प्रकाश में चमचमा रहे थे।

एक लैम्प के नीचे से आगे बढ़ने पर उसकी छोटी परछाँई उसके आगे फैलती चलती। ज्यों-ज्यों वह लैम्प से आगे बढ़ता, परछाँई पलट कर पीछे हो जाती। बीच-बीच में वृक्षों की टहनियों की परछाँई उसके ऊपर से होकर निकल जाती। सड़क पर पड़ा प्रत्येक भीगा पत्ता लैम्पों की किरणों का उत्तर दे रहा था। दिलीप सोच रहा था—मनुष्य के बिना भी संसार कितना व्यस्त और रोचक है ?

कुछ कदम आगे बढ़ने पर सड़क किनारे नींबू के वृक्षों की छाया में कोई श्वेत सी चीज़ दिखाई दी । कुछ और बढ़ने पर मालूम हुआ, कोई छोटा सा लड़का सफ़ेद कुर्ता पायजामा पहिरे, एक थाली सामने रखे कुछ बेच रहा है ।

बचपन में गली मुहल्ले के लड़कों के साथ उसने अकसर खोमचे वाले से सौदा खरीद कर खाया था । अब वह इन बातों को भूल चुका था । परन्तु इस सर्दी में सुनसान सड़क पर, जहाँ कोई आने जाने वाला नहीं, यह खोमचा बेचने वाला कैसे बैठा है ?

खोमचे वाले के लुद्र शरीर और आयु ने भी उसका ध्यान आकर्षित किया । उसने देखा, रात में सौदा बेचने निकलने वाले इस सौदागर के पास मिट्टी के तेल की डिबरी तक नहीं । समीप आकर उसने देखा, वह लड़का सर्द हवा में सिकुड़ कर बैठा था । दिलीप के समीप आने पर उसने आशा की एक निगाह उसकी ओर डाली और फिर आँखें झुका लीं ।

दिलीप ने और ध्यान से देखा, लड़के के मुख पर खोमचा बेचने वालों की-सी चतुरता न थी बल्कि उसकी जगह थी एक कातरता । उसकी थाली भी खोमचे का थाल न होकर घरेलू व्यवहार की एक मामूली हल्की मुरादाबादी थाली थी । तराजू भी न था । थाली में कागज़ के आठ टुकड़ों पर पकौड़ों की बराबर-बराबर ढेरियाँ लगाकर रख दी गई थीं ।

दिलीप ने सोचा इस ठण्डी रात में हमी दो व्यक्ति बाहिर हैं । वह उसके पास जाकर ठिठक गया । मनुष्य मनुष्य में कितना भेद होता है ? परन्तु मनुष्यत्व एक चीज़ है जो कभी-कभी भेद की सब दीवारों को लाँघ जाती है । दिलीप को समीप खड़े होते देख लड़के ने कहा—

‘एक-एक पैसे में एक-एक ढेरी ।’

एक क्षण चुप रह दिलीप ने पूछा—‘सबके कितने पैसे ?’

बच्चे ने उँगली से ढेरियों को गिनकर जवाब दिया—‘आठ पैसे ।’

दिलीप ने केवल बात बढ़ाने के लिए पूछा—‘कुछ कम नहीं लेगा ?’

सौदा बिक जाने की आशा से जो प्रफुल्लता बालक के चेहरे पर आ गई थी, वह दिलीप के इस प्रश्न से उड़ गई । उसने उत्तर दिया—‘माँ बिगड़ेंगी ।’

इस उत्तर से दिलीप द्रवित हो गया और बोला—‘क्या पैसे माँ को देगा ।’ बच्चे ने हामी भरी ।

दिलीप ने कहा—‘अच्छा सब दे दो ।’

लड़के की व्यस्तता देख दिलीप ने अपना रुमाल निकाल कर दे दिया और पकौड़े उसमें बँधवा लिये ।

आठ पैसे का खोमचा बेचने जो इस सर्दी में निकला है उसके घर की क्या अवस्था होगी ? यह सोचकर दिलीप सिहर उठा । उसने जेब से एक रुपया निकाल लड़के की थाली में डाल दिया । रुपये की खनखनाहट से वह सुनसान रात गूँज उठी । रुपये को देख लड़के ने कहा—‘मेरे पास तो पैसे नहीं हैं ।’

दिलीप ने पूछा—‘तेरा घर कहाँ है ?’

‘पास ही गली में है’—लड़के ने जवाब दिया ।

दिलीप के मन में उसका घर देखने का कौतूहल जाग उठा । बोला—‘चलो मुझे भी उधर से ही जाना है । रास्ते में तुम्हारे घर से पैसे ले लूँगा ।’

बच्चे ने घबराकर कहा—‘पैसे तो घर पर भी न होंगे ।’

दिलीप सुनकर सिहर उठा परन्तु उत्तर दिया—‘होंगे तुम चलो ।’

लड़का खाली थाली को छाती से चिपटा आगे-आगे चला और उसके पीछे बाइसिकल को थामे दिलीप ।

दिलीप ने पूछा—‘तेरा बाप क्या करता है ?’

लड़के ने उत्तर दिया—‘बाप मर गया है ।’

दिलीप चुप हो गया । कुछ और दूर जा उसने पूछा—‘तुम्हारी माँ क्या करती है ?’

लड़के ने उत्तर दिया—‘माँ एक बाबू के यहाँ चौका-बर्तन करती थी, अब बाबू ने हटा दिया ।’

दिलीप ने पूछा—‘क्यों, हटा दिया बाबू ने ?’

लड़के ने जवाब दिया—‘माँ अढ़ाई रुपया महीना लेती थी, जगतू की माँ ने बाबू से कहा कि वह दो रुपये में सब काम कर देगी । इसलिए बाबू की घरवाली ने माँ को हटाकर जगतू की माँ को रख लिया ।’

दिलीप फिर चुप हो गया । लड़का नंगे पैर गली के कीचड़ में छप-छप करता चला जा रहा था । दिलीप को कीचड़ से बचकर चलने में असुविधा हो रही थी । लड़के की चाल की गति को कम करने के लिए दिलीप ने फिर प्रश्न किया—‘तुम्हें जाड़ा नहीं मालूम होता ?’

लड़के ने शरीर को गरम करने के लिये चाल को और तेज़ करते हुए उत्तर दिया—‘नहीं ।’

दिलीप ने फिर प्रश्न किया—‘जगतू की माँ क्या करती थी ?’

लड़के ने कहा—‘जगतू की माँ स्कूल में लड़कियों को घर से बुला लाती थी । स्कूल वालों ने लड़कियों को घर से लाने के लिए मोटर रखली है, उसे निकाल दिया ।’

गली के मुख पर कमेटी का बिजली का लैम्प जल रहा था । ऊपर की मंजिल की खिड़कियों से भी गली में कुछ प्रकाश पड़ रहा था । उससे गली का कीचड़ चमक कर किसी कदर मार्ग दिखाई दे रहा था ।

सँकरी गली में एक बड़ी खिड़की के आकार का दरवाज़ा खुला था । उसका धुँदला लाल सा प्रकाश सामने पुरानी ईंटों की दीवार पर पड़ रहा था । इसी दरवाज़े में लड़का चला गया ।

दिलीप ने भौंककर देखा मुश्किल से आदमी के क्रद की ऊँचाई की कोठरी में—जैसी प्रायः शहरों में ईंधन रखने के लिये बनी रहती हैं—धुँआँ उगलती मिट्टी के तेल की एक दिबरी अपना धुँदला लाल प्रकाश फैला रही थी। एक छोटी चारपाई, जैसी कि श्राद्ध में महा-ब्राह्मणों को दान दी जाती है, काली दीवार के सहारे खड़ी थी। उसके पाये से दो-एक मैले कपड़े लटक रहे थे। एक क्षीणकाय, आधी उमर की स्त्री मैली-सी धोती में शरीर लपेटे बैठी थी।

बेटे को देख स्त्री ने पूछा—‘सौदा बिका बेटा ?’

लड़के ने उत्तर दिया—‘हाँ माँ, और रुपया माँ के हाथ में देकर कहा—‘बाकी पैसे बाबू को देने हैं।’

रुपया हाथ में ले माँ ने विस्मय से पूछा—‘कौन बाबू, बेटा ?’

बच्चे ने उत्साह से कहा—‘बाईसिकल वाले बाबू ने सब सौदा लिया है। उसके पास छुट्टे पैसे नहीं थे। बाबू गली में खड़ा है।’

घबराकर माँ बोली—‘रुपये के पैसे कहाँ मिलेंगे बच्चा ?’ सिर के कपड़े को सम्भाल, दिलीप को सुनाने के अभिप्राय से माँ ने कहा—‘बेटा, रुपया बाबूजी को लौटाकर घर का पता पूछ ले, पैसे कल ले आना।’

लड़का रुपया ले दिलीप को लौटाने आया। दिलीप ने ऊँचे स्वर से, ताके माँ सुन ले, कहा—‘रहने दो रुपया, कोई परवाह नहीं फिर आ जायगा।’

सिर के कपड़े को आगे खींच स्त्री ने कहा—‘नहीं जी, आप रुपया लेते जाइये, बच्चा पैसे कल ले आयगा।’

दिलीप ने शरमाते हुए कहा—‘रहने दीजिये, यह पैसे मेरी तरफ से बच्चे को मिठाई खाने के लिए रहने दीजिये।’

स्त्री नहीं-नहीं करती रह गई। दिलीप अँधेरे में पीछे हट गया।

स्त्री के मुर्झाये, कुम्हलाये पीले चेहरे पर कृतज्ञता और प्रसन्नता की

भलक छा गई। रुपया अपनी चादर की खूँट में बाँध, एक ईंट पर रखे पीतल के लोटे से बाँह के इशारे से पानी ले उसने हाथ धो लिया और पीतल के एक बेले के नीचे से मैले अँगोछे में लिपटी एक रोटी निकाल, बेटे का हाथ धुला उसे खाने को दे दी।

बेटा तुरन्त की कमाई से पुलकित हो रहा था। मुँह बना कहा—
‘जुँ-जुँ रुखी रोटी !’

माँ ने पुचकारकर कहा—‘नमक डाला हुआ है बेटा।’

बच्चे ने रोटी ज़मीन पर डाल दी और ँँठ गया—‘सुबह भी रुखी रोटी, हाँ, रोज़-रोज़ रुखी।’

हाथ आँखों पर रख बच्चा मुँह फैलाकर रोना ही चाहता था, माँ ने उसे गोद में खींच लिया और कहा—‘मेरा राजा बेटा, सुबह ज़रूर दाल खिलाऊँगी। देख, बाबू तेरे लिए रुपया दे गये हैं। शाबाश ! सुबह मैं तुझे ख़ूब सौदा बना दूँगी, फिर तू रोज़ दाल खाना।’

बेटा रीझ गया। उसने पूछा—‘माँ तूने रोटी खाली ?’

खाली अँगोछे को तहाते हुए माँ ने उत्तर दिया—‘हाँ, बेटा अब मुझे भूख नहीं है, तू खाले !’

भूखी माँ का बेटा बचपन के कारण रुठा था परन्तु माँ की बात के बावजूद घर की हालत से परिचित था। उसने अनिच्छा से एक रोटी माँ की ओर बढ़ाकर कहा—‘एक रोटी तू खाले।’

माँ ने स्नेह से पुचकारकर कहा—‘ना बेटा, मैंने सुबह देर से खाई थी, मुझे अभी भूख नहीं, तू खा।’

दिलीप के लिए और देख सकना सम्भव न था। दाँतों से होठ दबा वह पीछे हट गया।

× • × ×

मकान पर आकर वह बैठा ही था, नौकर ने आ दो भद्रपुरुषों के नाम बताकर कहा, आये थे बैठकर चले गये। खाना तैयार होने

की सूचना दी। दिलीप ने उसकी ओर बिना देखे ही कहा—‘भूख नहीं है।’ उसी समय उसे लड़के की माँ का, ‘भूख नहीं’ कहना याद आ गया।

नौकर ने विनीत स्वर में पूछा—‘थोड़ा दूध ले आऊँ?’

दिलीप को गुस्सा आ गया। उसने विद्रूप से कहा—‘क्यों भूख न हो तो दूध पिया जाता है?.....दूध ऐसी फ़ालतू चीज़ है?’

नौकर कुछ न समझ विस्मित खड़ा रहा।

दिलीप ने खीझकर कहा—‘जाओजी!’

मिट्टी के तेल की डिबरी के प्रकाश में देखा वह दृश्य, उसकी आँखों के सामने से हटना न चाहता था।

छोटे भाई ने आकर कहा—‘भाभी ने यह पत्र भेजा है और लिफ़ाफ़ा दिलीप की ओर बढ़ा दिया।’

दिलीप ने पत्र खोला। पत्र की पहिली लाइन में लिखा था—

“मैं इस जीवन में दुख ही देखने के लिए पैदा हुई हूँ.....”

दिलीप ने आगे न पढ़, फाड़कर फेंक दिया। उसके माथे पर बल पड़ गये। उसके मुँह से निकला—

‘काश! तुम जानतीं दुख किसे कहते हैं।.....तुम्हारा यह रसीला दुख तुम्हें न मिले तो जिन्दगी दूभर हो जाय।’



